* प्रेरणा की दिव्य रेखाए

* प्रवचनकार -
आचार्य श्री नानालाल जी म सा

* सपादक
प श्री बसतीलाल नलवाया

* प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग
बीकानेर - 334001 (राज.)
फोन - 544867

* सस्करण
प्रथम – 1977 1100 प्रतियॉ
द्वितीय – 1998 1100 प्रतियॉ

* मूल्य 25 00 रुपये मात्र

* मुद्रक
फ्रैंण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर-302003
फोन - 565904

समर्पण

परम श्रद्धेय, बाल ब्रह्मचारी, चारित्र-चूडामणि,
आगमनिधि, जिनशासन-प्रद्योतक,
समता-दर्शन प्रणेता

धर्मपाल-प्रतिबोधक

*

आचार्य श्री नानालाल जी म.सा.

को

सादर सविनय समर्पित

साहित्य समिति
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर

1	श्री गुमानमल चोरडिया	जयपुर	सयोजक
2	श्री इन्द्रचन्द बैद	भीलवाडा	सह सयोजक
3	श्री पीरदान जी पारख	बीकानेर	सदस्य
4	श्री चम्पालाल डागा	बीकानेर	"
5	श्री भवरलाल कोठारी	बीकानेर/जयपुर	"
6	श्री सरदारमल काकरिया	कलकत्ता	"
7	श्री केसरीचद सेठिया	मद्रास	"
8	श्री मोहनलाल मूथा	जयपुर	"
9	श्री नेमिचद तातेड	दिल्ली	"
10	श्री कमलचद सिपानी	बैगलौर	"
11	श्री सायरचद छल्लाणी	दिल्ली	"
12	डा सजीव भानावत	जयपुर	"
13	अध्यक्ष श्री गुमानमल चोरडिया	जयपुर	पदेन सदस्य
14	महामत्री श्री सागरमल जी चपलोत, नीम्बाहेडा		

प्रकाशकीय

(प्रथम सस्करण)

परम श्रद्धेय, समता दर्शन प्रणेता, धर्मपाल प्रतिबोधक, जिनशासन प्रद्योतक, बाल ब्रह्मचारी, आचार्य प्रवर पूज्य श्री श्री 1008 श्री नानालाल जी म सा ने महती कृपा करके सवत् 2032 का वर्षावास देशनोक मे किया । यह देशनोक–सघ का अहोभाग्य और भारी पुण्यवानी का सुफल था। परम श्रद्धेय आचार्य श्री के प्रबल प्रताप से चातुर्मास काल मे ज्ञान–ध्यान, स्वाध्याय व त्याग–तपस्या की देशनोक मे बराबर झडी सी लगी रही।

प्रतिदिन व्याख्यान के समय देशनोक एव आस–पास के ग्रामवासी तथा दूर–दूर से भी बडी सख्या मे आए हुए धर्मप्रेमी भाई–बहिनो ने परम श्रद्धेय आचार्य श्री के प्रवचनो का लाभ लिया। आचार्य श्री के प्रवचन सीधी एव सरल भाषा मे होते है, फलत श्रोताओ पर उनका जादू का सा असर होता है और प्रवचन सुनकर वे गद्गद् हो जाते है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म के प्रवचन तत्कालीन होते है, अत चातुर्मास के आनद को अक्षुण्ण रखने हेतु प्रवचनो को ग्रन्थ रूप मे प्रकाशित करने से जन–साधारण को उनका स्थायी लाभ प्राप्त होता रहता है। इसी भावना से देशनोक मे दिए गए पर्युषण–प्रवचनो का सग्रह **'प्रेरणा की दिव्य-रेखाए'** नाम से प्रकाशित किया गया है।

इस उत्तम प्रवचन–सग्रह के सम्पादक प श्री बसन्तीलाल जी सा नलवाया हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र है, जिन्होने अपने अन्य आवश्यक कार्यों मे से समय निकालकर यह कार्य पहले सम्पन्न करने की कृपा की।

आशा है, इस प्रकाशन का सभी धर्म–प्रेमी भाई–बहिन पूरा लाभ उठाएगे।

– बाधुदेवी दूगड

प्रकाशकीय

(द्वितीय सस्करण)

इन पर्युषण प्रवचनो को पाठको ने अत्यन्त गभीरता और मुद्रभाव से पढा। पाठको की बढती रुचि को देख कर इस ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण कराने मे मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। पुनर्मुद्रण के इस कार्य मे डा सजीव भानावत, जयपुर का जो सहयोग मिला, उसके लिए हम इनके आभारी है। फ्रैण्डस प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स ने इस ग्रन्थ के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन मे जो सहयोग दिया, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

20–03–98

जयपुर

गुमानमल चोरडिया — सागरमल चपलोत

सयोजक, साहित्य समिति — महामत्री,

अध्यक्ष श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर (राज॰)

✲ ✲ ✲ ✲

पूर्व सहयोगी

स्व. श्रीमान् सेठ अमोलकचन्द जी सा. दूगड
(जीवन-रेखा)

मरुभूमि प्रदेश मे बीकानेर जिले के अन्तर्गत देशनोक ग्राम जो करणी माता के मन्दिर के कारण सुविख्यात है, वहा के निवासी श्रीमान् अमोलकचद जी सा दूगड धर्मपरायण और समाजसेवी आदर्श श्रावक थे। आपका जन्म सवत् 1962 कार्तिक शुक्ला 3 को हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम दानमल जी और माताजी का पवित्र नाम श्रीमती हीराबाई था। आपके दो भाई एव दो बहिनो मे आपकी एक बडी बहिन पेमाबाई व आपसे छोटे भ्राता श्री तोलाराम जी आपसे पहले ही वैकुठवासी हो गये। वर्तमान मे आपकी बहिन श्री किसनाबाई व अनुज भ्राता श्री घेवरचद जी अपना जीवन धर्मनिष्ठा से व्यतीत कर रहे है।

आपका शुभ–विवाह श्रीमती बाधुदेवी के साथ हुआ। इस दम्पती से चार पुत्र और दो पुत्रिया हुईं। चारो पुत्रो के नाम क्रमश श्री मानिकचद जी, श्री मोतीलाल जी, स्वर्गीय श्री जयचदलाल जी एव श्री भीखमचद जी है। पुत्रियो के नाम श्री सोनादेवी और श्री मैनादेवी है।

श्री अमोलकचद जी सा ने अपनी 13 वर्ष की बाल्य अवस्था मे ही कार्य–भार सभाल लिया था। आप व्यापार के निमित्त बगाल गये एव अपनी व्यापारिक प्रतिभा और सूझबूझ से व्यापार को बहुत चमकाया। आपकी वर्तमान समय मे तीन फर्में चल रही है –

1 मानिकचद जैचन्दलाल, कलकत्ता।

2 मोतीलाल भीकमचद, कलकत्ता।

3 मोतीलाल विनोदकुमार, कलकत्ता।

इनमे पहली फर्म पर एल्युमिनियम का व्यवसाय है। दूसरी फर्म पर मनिहारी तथा तीसरी पर रेडीमेड वस्त्रो का व्यवसाय है। आपने धन न केवल अर्जित ही किया अपितु उसे सामाजिक और धार्मिक प्रवत्तियो मे भी लगाया। आपने देशनोक मे अमोलकचद दूगड प्राथमिक विद्यालय का भवन बनवाकर शासन के हस्तगत किया, जिसमे वर्तमान मे लगभग 200 छात्र विद्या पा रहे है।

स॰ 2032 मे जिनशासन प्रद्योतक, चारित्र–चूडामणि प्रात स्मरणीय आचार्य प्रवर श्री 1008 श्री नानालाल जी म सा का देशनोक मे चातुर्मास हुआ। आपने उस समय धर्मध्यान तथा सेवा–पर्युपासना का अच्छा सहयोग दिया था। आचार्यदेव के कुछ प्रवचनो को सर्वसाधारण के उपयोगार्थ प्रकाशित करने की आपकी अभिलाषा जागृत हुई। इस दिशा मे प्रयत्न भी शुरू हो गया किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि मिती कार्तिक शुक्ला 5, स॰ 2032 को आपका र्स्वगवास हो गया। आपकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। इस अभिलाषा के अनुसार इन प्रवचनो का प्रकाशन उनकी धर्मपत्नी द्वारा कराया जा रहा है।

आपके एक सुपुत्र श्री जयचदलाल जी का 25 वर्ष की भर–जवानी मे आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। इसका उन्हे तथा परिवार को तीव्र दु ख रहा।

श्री अमोलकचद जी सा का जीवन यशस्वी रहा है। वे अपने पीछे भरापूरा समृद्ध परिवार छोड गये है। इस प्रकार आपका जीवन एक सद्–गृहस्थ का सफल जीवन रहा है।

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
1	शाश्वत सौन्दर्य	1
2	अन्तर्दृष्टि का उद्‌घाटन	31
3	कर्तव्य–बोध	60
4	चेतन, अपने घर पर आओ	88
5	आध्यात्मिक जीवन का अनुसधान	113
6	चरित्र का मूल्याकन	137
7	नाव तिराई बहता नीर मे	169
8	आत्मा का अन्तर्नाद, खामेमि सव्वे जीवा	198

शाश्वत–सौन्दर्य

श्री जिनराज सुपार्श्व पूरो आश हमारी।
सुगुण सनेही साहिब साचो, सेवक ने सुखकारी
धर्म, काम, धन, मोक्ष इत्यादिक, मनवाछित सुख पूरो।
बार–बार यही विनती भव–भव चिन्ता चूरो।।

प्रार्थना के माध्यम से सुपार्श्वनाथ भगवान् के चरणो मे आत्मा का निवेदन चल रहा है। भव्यजनो की भावना विभिन्न रूप लेकर प्रभु के चरणो मे उपस्थित होती है। विभिन्न परिस्थितियो का अनुभव करती हुई आत्मा इस निष्कर्ष पर पहुॅचती है कि उसकी आशाओ की पूर्ति जगत् के अन्य प्राणियो से या अन्य भौतिक पदार्थों से होने वाली नहीं है। जगत्वर्ती पुरुषो का आद्योपान्त अवलोकन करने के पश्चात् आत्मा इस परिणाम पर पहुचती है कि जो स्वय आशा की जजीरो से जकडे हुए है वे दूसरो की आशाओ को कैसे पूर्ण कर सकते है ? जो स्वय तृष्णा से तडफ रहा है, जिसके कठ प्यास के मारे सूख रहे है, वह व्यक्ति दूसरे की प्यास को कैसे शान्त कर सकता है ? जो व्यक्ति अपने अन्त करण मे भौतिक पदार्थों की लालसाओ को बटोरे बैठा है, वह दूसरे की आध्यात्मिक आशा की तृप्ति कैसे कर सकता है ? जिसने जिस वस्तु का आस्वादन नहीं किया है, वह उसका निरूपण कैसे कर सकता है ? जिसने स्वय जिस मार्ग का अवलोकन नहीं किया है, वह दूसरे को मार्ग नहीं बता सकता। जिसका दृष्टिकोण बाहर ही बाहर दौडता रहा जो आत्मा से भिन्न भौतिक पदार्थों को ही

सब कुछ समझता रहा वह अपने भीतरी स्वरूप को कैसे समझ सकता है ? जिसने कभी अन्तरतर के समुद्र मे डुबकी नही लगाई, वह उसमे रही हुई अमूल्य रत्न–राशि को कैसे पा सकता है ?

चेतन की विराट् शक्ति .

यह विराट् चेतन–तत्त्व अपने आप मे परिपूर्ण है। उसे अन्य पदार्थो की कोई अपेक्षा नही रहती। अन्य पदार्थों की अपेक्षा उसी को रहती है जो स्वय परिपूर्ण न हो। जल की दृष्टि से समुद्र परिपूर्ण है, वह कूप–जल की या नदी के जल की आशा नही करता। यह बात दूसरी है कि समग्र जल स्वयमेव समुद्र की ओर चला आता है। समुद्र उसकी आकाक्षा या आशा नही रखता। वैसे ही विराट् चेतन स्वत परिपूर्ण है अतएव वह अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखता। चेतन तत्त्व अपने भौतिक रूप मे स्वय प्रभु और सार्वभौम शक्ति–सम्पन्न है। परमात्मा की शक्ति से उसकी शक्ति किञ्चित् भी कम नही है। जिस तत्त्व मे ऐसी विराट् शक्ति रही हुई है, उसके लिए तुच्छ भौतिक पदार्थों की लालसा कोई महत्त्व नही रखती । क्या सूर्य अपने प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए मिट्टी के ढेलो की अपेक्षा रखता है ? क्या कभी वह पहाडो, चट्टानो या पृथ्वीतल की अन्य चीजो की आशा या अपेक्षा रखता है ? हर कोई जानता है कि सूर्य को इनकी अपेक्षा नही रहती । इसी तरह भव्य जनो को यह विश्वास होता है कि उनकी आत्मा सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश का पुज है। वह सूर्य से भी अधिक दैदीप्यमान है। "सूर्य का प्रकाश नियमित क्षेत्र और नियत काल की परिधि मे सीमित होता है। समग्र लोक को वह प्रकाशित नहीं कर सकता।"

मध्यलोक के अमुक–अमुक क्षेत्र को ही वह आलोकित करता है लेकिन आत्मा की ज्ञान–रश्मिया न केवल मध्यलोक को अपितु उर्ध्वलोक और अधोलोक को भी आलोकित करती हैं। वह तीनो लोको के समग्र स्वरूप को प्रकाशित करने वाली है। लोक ही नहीं, लोक के समान असख्य या अनन्त लोक यदि अलोक मे भी हो तो उनको भी प्रकाशित करने की शक्ति–जानने की शक्ति–आत्मा मे है। इतनी विराट् शक्ति का स्वामी यह चेतन–तत्त्व है। ऐसा विराट् चेतन –तत्त्व भौतिक सारहीन पदार्थों की आशा करे, यह कितना हास्यास्पद है।

विराट् शक्ति के प्रति विश्वास

क्या आपको आत्मा की इस विराट् शक्ति के प्रति विश्वास है ? आपकी आत्मा अनन्त शक्तियो का पिण्ड है, क्या कभी आप यह अनुभव करते है ? क्या अपने आप के प्रति आपकी आस्था है ? कहने के लिये तो आप कह सकते हैं कि 'महाराज, आप कह रहे है तो हम मान लेते है।' परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि सुनने–सुनने मे अन्तर होता है। एक सुनना होता है केवल कानो से और एक सुनना होता है अन्तर–तर से। कानो से हर कोई सुनता है परन्तु अन्तर–तर से सुनने वाला श्रावक कहलाता है। यदि आप अपनी दृष्टि को बाहर से हटा कर अपनी आत्मा मे झाकने का प्रयत्न करेगे तो आपको अपनी आत्मा मे रही हुई विराट् शक्ति का स्वरूप–दर्शन हो सकेगा।

अभी आप देशनोक के इस धार्मिक भवन मे बैठ कर

प्रवचन–श्रवण कर रहे है। इस धार्मिक भवन को बनवाने वाले सघ के सदस्यो को और इसका निर्माण करने वाले कारीगरो को आप जानते है लेकिन क्या यह विशाल भवन उनको जानता है ? क्या यह भवन यह जानता है कि इतने मनुष्य यहा एकत्र होकर धर्म–श्रवण कर रहे है ? क्या इसमे यह विज्ञान–शक्ति है ? इस भवन की छत तथा पडाल मे लगे हुए टीन क्या यह जान रहे हैं कि हमारी छाया मे इतने व्यक्ति बैठे हुए है ? ये जड पदार्थ यह नही जान सकते। आप यह सब जान रहे है। इस जानकारी के लिए क्या आपको मकान आदि किसी जड पदार्थ की अपेक्षा रहती है ? नही, आपका ज्ञान आपके पास है। कलकत्ता मे कौनसी चीज कहा है, यह आप जानते है। जो भाई बम्बई आदि स्थानो मे पहुचे है, वहा की वस्तुओ का विज्ञान उनके पास है। वह विज्ञान कहा है ? दृष्टा कहा है ? वहा है या यहा है ? आप इस सन्दर्भ मे चितन कीजिये। अपनी छोटी सी दृष्टि से नेत्रो के गोलक से आप कुछ पदार्थों को देख रहे है। परन्तु इन नेत्र–गोलक के पीछे छिपा हुआ जो वास्तिवक दृष्टा है उसमे जो शक्ति है वह न नेत्र–गोलक मे है, न मकान मे है, न पहाड मे है और न चट्टान मे, न सोने मे है, न रत्न मे है और न किसी अन्य जड पदार्थ मे है। वह शक्ति आप मे है। यदि आप बाहर से हटकर अपने आप मे केन्द्रित हो जाए तो आप उस विराट्–शक्ति को देख सकते है। गीता के अनुसार योगीश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन कराया था। आप भी अपने उस विराट् स्वरूप को देखने और समझने का प्रयास करे। आपका विराट् स्वरूप अभी आच्छन्न है,

ढका हुआ है। भस्म से आच्छादित आग की तरह आपकी आत्मा की ज्योति मोह के आवरणो से मद पडी हुई है। यदि आप अपने पुरुषार्थ से मोह के आवरणो को दूर करदे तो आपकी आत्मा की अनन्त ज्योति और विराट् शक्ति प्रगट होकर समस्त लोकालोक को अपनी शक्तियो से आलोकित कर सकेगी।

विश्वास फलदायक

यदि आपको अपनी अनन्त शक्तियो पर दृढ विश्वास हो जाय तो निस्सदेह आप अनन्त शक्ति से सम्पन्न हो सकते है। इसके लिए आवश्यक है–दृढ आस्था, अडोल विश्वास और प्रबल सकल्प। सस्कृत की एक सूक्ति है–

विश्वासो फलदायक

विश्वास फलदायक होता है। विश्वास के अभाव मे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त नही कर सकता। विश्वास को लेकर चलने वाला व्यक्ति ही सफलता के शिखर पर पहुँचता है। अपनी आत्मा की विराट शक्ति के विश्वास का सबल लेकर यदि आप साधना के क्षेत्र मे आगे बढेगे तो निस्सदेह आप अपनी छिपी हुई–दबी हुई शक्ति को प्रकट करने मे सफलता प्राप्त कर सकेगे।

शिलाओ का भार

मै आपसे एक सीधा सा प्रश्न करू। यदि कोई व्यक्ति किसी दुर्घटना के कारण पत्थर की शिला के नीचे दब जाय तो वह करेगा ? आप चट उत्तर देगे कि वह किसी भी तरीके से

की कोशिश करेगा। यदि उसके हाथ खुले है तो उनसे शिला को हटाने का प्रयास करेगा। उस समय यदि कोई उसे कहे कि कलकत्ते से सोहन हलुवा आया है, अपने हाथो मे उसे ग्रहण करो। क्या वह व्यक्ति उस समय अपने हाथो को हलुवा ग्रहण करने मे लगाएगा ? या अपने पर पडी हुई शिला को हटाने के लिए हाथो का उपयोग करेगा ? स्पष्ट है कि वह पहले शिला को हटाने का प्रयास करेगा। वह जानता है कि शिला के नीचे अधिक समय तक दबे रहने पर प्राणो से हाथ धोना पडेगा। हलुवा तो, यदि जीवित रहा, कई बार खाने को मिल सकेगा। उस समय न वह सिनेमा (चल–चित्र) देखना पसद करेगा और न वह पाचो इन्द्रियो को मनोज्ञ लगने वाले किसी पदार्थ के प्रति ललचाएगा। उस समय उसका एक ही मनोरथ है, एक ही दृष्ट है, एक ही साध्य है किसी तरह शिला को हटाना ? वह अपनी समस्त शक्ति शिला को हटाने मे ही लगाएगा। यदि कदाचित् ऐसा न करते हुए वह सोहन हलुवा खाने या मनोज्ञ रूप आदि देखने मे लग गया तो आप उसे क्या कहेगे ? "मूर्ख" ।

सचमुच यह मूर्खता ही होगी । अब जरा आप अपनी स्थिति का सिहावलोकन करले कि कही ऐसी गलती या मूखर्ता हमसे तो नही हो रही है ? इस आत्मा पर बहुत भारी शिलाए पडी हुई है। ये शिलाए बाहरी नही है। बाहर की शिलाए तो दूसरो की सहायता से भी हटाई जा सकती है परन्तु आत्मा पर पडी हुई आठ कर्मो की भारी शिलाओ को हटाने के लिए तो स्वय को ही पुरुषार्थ करना पडता है । दूसरा व्यक्ति निमित्त मात्र हो सकता है, उपादान नही । मुख्य रूप से अपना पुरुषार्थ ही अपने लिए कारगर हो

सकता है। दूसरो की अपेक्षा रखने वाला व्यक्ति निर्बल और निराश होता है। अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने वाला व्यक्ति ही सफलता का वरण किया करता है। इन आठ कर्मों की शिलाओ को हटाने का काम आसान नहीं है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है परन्तु प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा साध्य है। यह आपका सद्भाग्य है कि आपकी पॉचो इन्द्रियो की शक्ति खुली हुई है, आपके हाथ–पॉव खुले हैं, आपका स्थूल औदारिक शरीर से खुला है, केवल आत्मिक शक्ति शिलाओ से दबी हुई है। ऐसी स्थिति मे आप अपनी इन्द्रियो का, शरीर का और शरीर के अगोपागो का उपयोग आत्मा की दबी हुई शक्तियो को प्रकट करने मे करेगे या खान–पान नाच–गान मे लगाऍगे, यह बात मै आपके विवेक पर छोडता हूँ।

पर्युषण एक पावन प्रसग

भाइयो ! पयुर्षण पर्व का आज प्रारम्भ हो रहा है। आत्मा पर पडी हुई आठ कर्मों की भारी शिलाओ को हटाने के लिए पुरुषार्थ करने हेतु आठ दिन के पर्युषण पर्व का पावन प्रसग हमारे सामने उपस्थित हुआ है। आत्मा के अभ्युदय का एक सुनहरा अवसर पर्युषण पर्व के रूप मे हमे प्राप्त हुआ है। यदि हम चाहे तो इस महान् आध्यात्मिक पर्व के प्रेरक सदेश को हृदयंगम करके अपनी आत्मा की दबी हुई अनन्त शक्तियो को उजागर कर सकते हैं। एक मौका फिर आया है अपनी आत्मा को जागृत करने का, एक स्वर्ण अवसर मिला है मोह के अन्धकार को चीर कर आत्मा की निर्मल ज्योत्स्ना को प्रस्फुटित करने का ! एक सुन्दर प्रसग आया है, आत्मा के सशोधन का !

पयुर्षण पर्व की विलक्षणता :

भारत पर्व–प्रधान देश है। इसमे जितने पर्व मनाये जाते हैं, उतने सभवत अन्य देशो मे कहीं नही मनाये जाते। पर्वों के पीछे कोई न कोई उद्देश्य रहा हुआ है। वह उद्देश्य भले हो आज धूमिल हो गया हो, तदपि पर्वों की परम्परा आज भी भारत मे प्रचलित है। रक्षा–बन्धन का पर्व रक्षा के उद्देश्य को लेकर आरभ हुआ था। यह बात दूसरी है कि उसके वर्तमान स्वरूप मे लोभ की विकृति का समावेश हो गया है। दीपमालिका पर्व स्वच्छता, सजावट, व्यापारिक लेन–देन की सफाई, व्यापार का लेखा–जोखा तथ बहीखातो के नवीनीकरण के उद्देश्य को लिये हुए आता है। यद्यपि इस पर्व के पीछे एक आध्यात्मिक विभूति की आलौकिक ज्योति का सम्बन्ध जुडा हुआ है तदपि वर्तमान मे यह गौण हो गया है। आन्तरिक स्वच्छता की अपेक्षा बाह्य स्वच्छता की प्रधानता ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है। होली का पर्व मनोरजन की प्रमुखता को लिये हुए हे। इस तरह अलग–अलग दृष्टिकोणो से कई पर्व प्रारम्भ हुए ओर उनकी परम्परा चल रही है। परन्तु उन सब पर्वों की अपेक्षा यह पर्युषण पर्व अपनी विलक्षणता को लेकर हमारे समक्ष आता है।

जहा अन्य पर्वों का उद्देश्य वाहरी आमोद–प्रमोद और भातिकता से सम्बद्ध होता हे, वहा पयुर्षण पर्व का उद्देश्य आत्मा का सजाने–सवारने का होता हे। अन्य पर्वों मे शरीर की सजावट की जाती ह, खान–पान आर आमोद–प्रमोद व मनोरजन किया जाता ह, घर–वार की वाहरी सफाई आर रगाई–पुताई की जाती ह। परन्तु पयुर्षण पर्व मे कोई अनूठा ही वातावरण दृष्टिगोचर

होता है। अपने आप मे यह एक विलक्षण पर्व है। यह शरीर को नही आत्मा को सजाने का पर्व है। यह बाहरी स्वच्छता का नहीं, हृदय को स्वच्छ करने का पर्व है। यह अन्य को जीतने का नहीं, अपितु आत्मविजय का महान् पर्व है।

यह पर्व प्रत्येक आत्मा के लिये हितावह है। इस पर्व के पीछे किसी जाति का सम्बन्ध नहीं है, यह किसी व्यक्ति या पार्टी की बपौती नहीं है। मानव मात्र के लिये यह पर्व उपादेय और मगलकारी है। आत्मिक आनन्द की उर्मियो से आत्मा को आह्लादित करता हुआ यह पावन पर्व हमारे सामने आया है –

थह पर्व पयुर्षण आया, घर–घर मे आनन्द छाया रे। यह०
कोई करे बेला–तेला, कोई देवे कर्मों को ठेला रे,
यह पर्व पर्युषण आया, दुनिया मे आनन्द छाया रे। यह०

यह पर्युषण पर्व जन–जन के मन को प्रमुदित कर रहा है। प्रत्येक के दिल मे आज विशेष धार्मिक उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा है। बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री–पुरुष–सभी के हृदय आनन्द से आन्दोलित हो रहे है। आज विशेष उत्साह और विशिष्ट तैयारी के साथ विपुल परिमाण मे आप धर्माराधना के लिये इस भवन मे एकत्र हुए है। विद्यार्थीगण भी यहा उपस्थित है परन्तु सभवत उन्हे थोडी देर बाद विद्यालय जाना पडेगा क्योकि इस पर्व प्रसग पर उनके लिये अवकाश की व्यवस्था नहीं है। क्रिसमस, ईद आदि पर्वों पर अवकाश की व्यवस्था है। उन धर्मावलम्बियो मे एकता है, सगठन है, जागृति है और धर्म के प्रति लगाव है। अत उनके लिए

अवकाश की व्यवस्था है। आप लोगो मे जागृति, एकरूपता और प्रयत्नशीलता शायद नहीं है। यदि एकरूप होकर इस दिशा मे प्रयत्न किया जाय तो इस पावन पर्व के प्रसग पर भी अवकाश की व्यवस्था हो सकती है ताकि विद्यार्थी भी इस पावन पर्व की आराधना स्वतत्र होकर कर सके।

आध्यात्मिक सप्ताह

आज के वातावरण मे देश मे विविध सप्ताहो का आयोजन होता रहता है। कभी राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है, कभी कृषि सप्ताह, कभी श्रम सप्ताह। इन आयोजित सप्ताहो मे अन्य कार्यों से छुट्टी लेकर विशेष कार्यक्रमो की ओर ध्यान दिया जाता है। राष्ट्रीय सप्ताह मे राष्ट्रीयहित के दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर तदनुरूप कार्यक्रमो का आयोजन हुआ करता है। सफाई–सप्ताह मे स्वच्छता को प्रमुखता दी जाती है और वैसे ही कार्यक्रम मुख्य रूप से सम्पन्न किये जाते है। कृषि सप्ताह मे कृषि के विषय मे विशेष सोच–विचार किया जाता है। इसी प्रकार यह पर्युषण पर्व भी आध्यात्मिक सप्ताह है। प्रारम्भ के सात दिन साधना के क्षण है। आठवा दिन परीक्षण का है। इसमे बाह्य–जगत् के क्रिया–कलापो से निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक जगत् मे सचार करना है। आत्मा को स्वच्छ बनाने वाले कार्यक्रमो को प्रमुखता देनी है। मन, मस्तिष्क और हृदय की गदगी को मिटाना है। आत्मा को पवित्र बनाना है। आत्मा मे न जाने कितना कचरा इकट्ठा हो रहा है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मत्सर तृष्णा आदि का कूडा–कचरा इस आत्मा को मलिन बनाये हुए है। इसमे कूडे–कचरे को साफ करना आवश्यक

है अन्यथा भयकर गन्दगी और सडान पैदा करेगा। यदि कूडा–कचरा अधिक इकट्ठा हो जाय तो फिर स्वच्छ बनाना बहुत कठिन हो जाएगा। आपके घर मे यदि अधिक दिन तक गदगी रह जाय तो आप जानते ही है कि कितने कीडे–मच्छर पैदा हो जाते है और मलेरिया आदि अनेक रोगो की उत्पत्ति के निमित्त बनते हैं। अतएव आप अपने मकान को साफ–सुथरा रखने का प्रयास करते है। जितनी सावधानी और चिन्ता आप अपने मकान की सफाई के विषय मे रखते है उतनी चिन्ता या उतनी सावधानी आत्मा की सफाई के लिये रखते है क्या ? दु ख के साथ कहना होगा कि आत्मा की सफाई के लिये उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। हम अपनी आत्मा को विषय–कषायो से मलिन बनाते रहते है, आत्मा के स्वास्थ्य को काम–क्रोध मद–लोभ से बिगाडते रहते है।

मन मन्दिर की सफाई

बन्धुओ ! यह याद रखना चाहिये कि हमारी यह आत्मा परमात्म–भाव का निवास–स्थान है। इस निवास–स्थान को गदा रख कर आप परमात्म भाव का आह्वान कैसे कर सकेगे ? गदे मन मे, गदे हृदय मे परमात्मा को कैसे आसीन किया जा सकता है? यदि आप अपने मन–मन्दिर मे हृदय के सिहासन पर परमात्मा को विराजमान करना चाहते है तो आपको अपने मन और हृदय को निर्मल, स्वच्छ और सुन्दर बनाना होगा। मन, हृदय और आत्मा को निर्मल बनाने के लिये ही यह पयुर्षण का पावन प्रसग आया है। वैसे तो प्रतिदिन मकान की सफाई करना आवश्यक है। यदि प्रतिदिन सफाई न की जा सके तो प्रति सप्ताह की जाती है। यदि

अवकाश की व्यवस्था है। आप लोगो मे जागृति, एकरूपता और प्रयत्नशीलता शायद नही है। यदि एकरूप होकर इस दिशा मे प्रयत्न किया जाय तो इस पावन पर्व के प्रसग पर भी अवकाश की व्यवस्था हो सकती है ताकि विद्यार्थी भी इस पावन पर्व की आराधना स्वतत्र होकर कर सके।

आध्यात्मिक सप्ताह ·

आज के वातावरण मे देश मे विविध सप्ताहो का आयोजन होता रहता है। कभी राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है, कभी कृषि सप्ताह, कभी श्रम सप्ताह। इन आयोजित सप्ताहो मे अन्य कार्यों से छुट्टी लेकर विशेष कार्यक्रमो की ओर ध्यान दिया जाता है। राष्ट्रीय सप्ताह मे राष्ट्रीयहित के दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर तदनुरूप कार्यक्रमो का आयोजन हुआ करता है। सफाई–सप्ताह मे स्वच्छता को प्रमुखता दी जाती है और वैसे ही कार्यक्रम मुख्य रूप से सम्पन्न किये जाते है। कृषि सप्ताह मे कृषि के विषय मे विशेष सोच–विचार किया जाता है। इसी प्रकार यह पर्युषण पर्व भी आध्यात्मिक सप्ताह है। प्रारम्भ के सात दिन साधना के क्षण हैं। आठवा दिन परीक्षण का है। इसमे बाह्य–जगत् के क्रिया–कलापो से निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक जगत् मे सचार करना है। आत्मा को स्वच्छ बनाने वाले कार्यक्रमो को प्रमुखता देनी है। मन, मस्तिष्क और हृदय की गदगी को मिटाना है। आत्मा को पवित्र बनाना है। आत्मा मे न जाने कितना कचरा इकट्ठा हो रहा है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मत्सर तृष्णा आदि का कूडा–कचरा इस आत्मा को मलिन बनाये हुए है। इसमे कूडे–कचरे को साफ करना आवश्यक

है अन्यथा भयकर गन्दगी और सडान पैदा करेगा। यदि कूडा–कचरा अधिक इकट्ठा हो जाय तो फिर स्वच्छ बनाना बहुत कठिन हो जाएगा। आपके घर मे यदि अधिक दिन तक गदगी रह जाय तो आप जानते ही है कि कितने कीडे–मच्छर पैदा हो जाते है और मलेरिया आदि अनेक रोगो की उत्पत्ति के निमित्त बनते हैं। अतएव आप अपने मकान को साफ–सुथरा रखने का प्रयास करते है। जितनी सावधानी और चिन्ता आप अपने मकान की सफाई के विषय मे रखते है उतनी चिन्ता या उतनी साग्वधानी आत्मा की सफाई के लिये रखते है क्या ? दु ख के साथ कहना होगा कि आत्मा की सफाई के लिये उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। हम अपनी आत्मा को विषय–कषायो से मलिन बनाते रहते है, आत्मा के स्वास्थ्य को काम–क्रोध मद–लोभ से बिगाडते रहते हैं।

मन मन्दिर की सफाई

बन्धुओ ! यह याद रखना चाहिये कि हमारी यह आत्मा परमात्म–भाव का निवास–स्थान है। इस निवास–स्थान को गदा रख कर आप परमात्म भाव का आह्वान कैसे कर सकेगे ? गदे मन मे, गदे हृदय मे परमात्मा को कैसे आसीन किया जा सकता है? यदि आप अपने मन–मन्दिर मे हृदय के सिहासन पर परमात्मा को विराजमान करना चाहते है तो आपको अपने मन और हृदय को निर्मल, स्वच्छ और सुन्दर बनाना होगा। मन, हृदय और आत्मा को निर्मल बनाने के लिये ही यह पयुर्षण का पावन प्रसग आया है। वैसे तो प्रतिदिन मकान की सफाई करना आवश्यक है। यदि प्रतिदिन सफाई न की जा सके तो प्रति सप्ताह की जाती है। यदि

ऐसा भी न बन पडे तो प्रतिमाह, यह भी न हो सके तो दीपमालिक के प्रसग पर सफाई की जाती है। इसी तरह मन–मन्दिर की सफाई प्रतिदिन आवश्यक है। यदि ऐसा न बन पडे तो पक्ष मे, यह भी न बन पडे तो चातुर्मास मे और यह भी सभव न हो तो इस पर्युषण पर्व मे तो अवश्य ही मन एव हृदय की सफाई कर ही लेनी चाहिए। एक भजन मे कहा गया है –

प्रेमी बन कर प्रेम से बन्दे, ईश्वर के गुण गाया कर।
मन–मन्दिर मे गाफिल, झाडू रोज लगाया कर।।
सोने मे तो रात गुजारी, दिन भर करता पाप रहा।
इसी तरह बरबाद समय को, करता अपने आप रहा।।
प्रात काल तू उठ कर बन्दे, सत्सगत मे आया कर।
प्रेमी बन कर प्रेम से बदे, ईश्वर के गुण गाया कर।।
मन–मन्दिर मे गाफिल, झाडू रोज लगाया कर।

उक्त भजन मे यह प्रेरणा दी गई है कि प्रतिदिन अपने मन–मन्दिर की सफाई की जाय। जो बुरे विचारो का कचरा मन मे इकट्ठा हो जाय उसे झाड–बुहार कर अलग कर दिया जाय। परमात्मा के भजन–प्रसग से मन–मन्दिर मे झाडू लगाना चाहिए। सतो के समीप पहुच कर प्रार्थना के माध्यम से दिल और दिमाग को साफ करना चाहिए। कदाचित् सदैव ऐसा न किया जा सके तो इन पर्युषण के दिनो मे – जो सारी दुनिया मे आनन्द की लहर दौडाने आये है– अपने विकारो की, आपसी मनोमालिन्य की सफाई कर ही लेनी चाहिए। पर्युषण पर्व का आठवा दिन विकारो पर विजय प्राप्ति का दिन है। प्रारभ के सात दिन्न विकार–विजय

की तैयारी के लिये है। इन सात दिनो मे आप पूर्ण तैयारी कर ले। जो गुत्थिया उलझ गई है, उन्हे सुलझाने की कोशिश करे। सवत्सरी के दिन तो सारा मैल धुल जाना चाहिए। तनिक भी मनोमालिन्य नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार की भावना को लेकर प्रत्येक भाई–बहिन को पर्युषण पर्व की आराधना का आनन्द लेना चाहिए।

इस प्रकार की मगलमय आराधना से ही आनन्द का सागर उमड पडेगा। कर्मों की भारी शिलाए हटेगी और आप स्वतत्र् होकर खडे हो सकेगे। विकारो की शिलाओ के नीचे दबे हुए व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति कैसे हो सकेगी ? आनन्द की अनुभूति करना है तो अपने सामर्थ्य से कर्म–शिलाओ को हटाने का प्रय न कीजिए, कर्मों के बन्धनो से उन्मुक्त होने के लिये पुरुषार्थ कीजिये। उपवास, बेला, तेला आदि बाह्यतप और विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, प्रायश्चित्त आदि आभ्यन्तर तप की आराधना करना कर्मों की शिलाओ को ढकेलना है।

बाह्य तप के साथ आभ्यन्तर तप की आराधना भी अनिवार्यत करनी चाहिये। उससे ही आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों की निर्जरा होती है, कर्म के भार से आत्मा हल्की होती है। इन आठ दिनो मे यह सावधानी रखनी चाहिए कि कोई नवीन कर्म आत्मा को भारी न बना दे। कर्मों के प्रवाह को रोकना चाहिए और पुराने कर्मों की निर्जरा करनी चाहिए। तभी आत्मा कर्मों से रहित होकर अपने मूल रूप को प्राप्त कर सकेग। शास्त्रीय परिभाषा मे इसे सवर और निर्जरा कहा जाता है। नवीन कर्मों का बन्धन न हो, इसके लिये

पूरा–पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये। इन आठ दिनो मे न हिसा करनी चाहिये, न झूठ बोलना चाहिये, न चोरी करनी है, न अब्रह्म का सेवन करना है, न उद्दाम धन–लालसा रखनी है, न नशीली वस्तुओ का सेवन करना है, न लडाई–झगडा करना है, न क्लेश–कलह करना है, न किसी के दिल को चोट पहुचानी है। ये आठ दिन आत्मशक्ति के दिन है। इन दिनो मे आत्मा का सिहावलोकन करना चाहिये। दूसरे के दोषो को देखने से या दूसरो पर मिथ्या आरोप लगाने से सदैव बचना चाहिए।

मिथ्या-आरोप जघन्य अपराध है

कई अज्ञानी व्यक्ति अपने दोषो का तो विचार नही करते किन्तु दूसरो पर मिथ्या–दोषारोपण करते हुए नहीं शरमाते है। वे बिना सिर–पैर की बाते उडाने मे ही आनद का अनुभव करते है। दूसरे के हृदय मे तीर चुभाने मे उन्हे बडा मजा आता है। वे अज्ञानी यह नही सोचते कि इस दुष्कर्म का परिणाम बडा भयकर होता है। जो इस प्रकार दूसरो पर असद् आरोप लगाता है, वह जघन्य अपराध करता है। शास्त्रकारो ने इसे भयकर पाप माना है। दूसरे के हृदय को छलनी बना देने के कारण यह भीषण हिसा का कार्य माना गया है। तदपि कई लोग अपनी आदत से बाज नही आते और 'बारह हाथ की काकडी और तेरह हाथ का बीज' वाली कहावत चरितार्थ करते रहते है। ऐसे लोग समाज मे विष घोलते है। उनसे सावधान रहना चाहिए।

लापसी मे जहर

एक बडा सा गाव था। उसमे एक सेठजी ने सारे गाव को

जीमने का न्यौता दिया। आजकल तो पचायती का वैसा महत्त्व नहीं रहा लेकिन उस समय उसका महत्त्व माना जाता था। अत पचो को बुलाकर उनकी आज्ञा मागी गई। पचो ने अनुमति देते हुए कहा कि शुद्ध घी की लापसी बनाना और एक मन मे 16 सेर घी डालना। आज्ञानुसार रसोई बनाई गई और सब दूर मेहमानो सहित सिगरी न्यौता दिला दिया। सब लोग जीमने की तैयारी करने लगे। बाल–बच्चो को और मेहमानो को साथ लेकर जीमने जाने के लिये पूरी तैयारी हो रही है।

भाईयो ! जैसी तैयारी लापसी जीमने के लिये की जा रही है, वैसी तैयारी इस धार्मिक भवन मे आध्यात्मिक जीमन जीमने के लिये की जाती है क्या ? यहा जो भोजन परोसा जाता है उसे जीमने के लिये अकेले–अकेले आते है या बाल–बच्चो और मेहमानो को भी साथ लाते है ? यह भोजन भी उतना ही रुचता है क्या, जितनी शुद्ध घी की लापसी रुचती है ? ध्यान रखिये, लापसी का जीमन क्षणिक है। मै जो भोजन परोस रहा हू वह स्थायी है। वह आपकी भूख को सदा के लिये शान्त करने वाला है। वह ऐसी तृप्ति करने वाला है कि फिर कभी भी भूख की वेदना ही न रहे। अतएव इस आध्यात्मिक भोजन मे भी उतनी ही रुचि होनी चाहिए। अस्तु !

गाव मे लापसी जीमने की तैयारी चल रही है। इधर एक सेठ बीमार था। लापसी का नाम सुनकर उसके मुह मे पानी आ गया। वह भी लापसी जीमने के लिये उत्सुक बना परन्तु वैद्यराज जी का इलाज चल रहा था। उसने वैद्य जी से

विचार किया कि गुड की लापसी खाने मे कोई हर्ज तो नही है ? सयोग से वैद्य जी उधर ही आ निकले। वे जरूरी काम होने से जल्दी मे थे तो भी सेठ ने उन्हे रोक कर पूछ ही लिया। वैद्य जल्दी मे थे अत 'लापसी मे जहर है, कहकर वे चले गये। सेठ ने सोचा– 'लापसी मे जहर है, खाऊगा तो मर जाऊगा। परिवार वालो को क्योकर भेजू? उसने परिवार वालो को कह दिया – 'चुपचाप घर मे बैठे जाओ, जीमने मत जाओ, लापसी मे जहर है'। उन्होने कहा– 'हम तो नही जायेगे परन्तु बहिन बेटिया और सगे सम्बन्धी जाएगे तो उनका क्या होगा ? सेठ ने कहा – 'चुपचाप उनको भी सूचना कर दो'। उनको सूचना दे दी गई। उन्होने अपने मिलने–जुलने वाले और सगे–सम्वन्धियो को सूचना कर दी कि लापसी मे जहर है, जीमने मत जाना'।

सारे गाव मे सनसनी फैल गई। कोई जीमने नही गया। सेठ ने सोचा कि 'क्या वात हो गई है ? लोग जीमने क्यो नहीं आ रहे है ? उसने खास–खास लोगो को बुलावा भेजा। फिर भी कोई नही आया। सेठ को वडा विचार हुआ कि 'मेरा क्या अपराध हो गया ह, जो लोग जीमन नही आ रहे हे ?' उसने जाजम विछा कर पचो का बुलाया और उनसे पूछा कि वात क्या हे, लोग जीमने क्यो नहीं आ रहे हे ? सव एक–दूसरे का मुह देखने लगे। उनमे से एक समझदार व्यक्ति न कहा कि क्यो इसे तग करते हो, जो वात हो, स्पष्ट क्या नही कहते ?

तव पचा ने कहा – ' ज्ञात हुआ हे कि वनी हुई लापसी मे जहर

सेठ ने कहा, 'कैसा जहर ? कौन कहता है कि लापसी मे जहर है ? पचो ने कहा, 'हमने प्रामाणिक व्यक्तियो से सुना है।'

सेठ – यह बात आपने किससे सुनी ? मैने तो जहर डलवाया नहीं है। आप इसकी जाच कीजिये।

पच – यदि तुमको पक्का विश्वास है कि इसमे जहर नहीं है तो पहले तुम जीम लो। फिर सब जीमने आ जाएगे।

सेठ ने सोचा – मैने तो लापसी मे विष मिलाया नहीं है परन्तु यदि किसी अन्य दुष्ट ने ऐसी हरकत कर दी हो तो क्या मालूम ? अत वह पहले जीमने मे आनाकानी करने लगा।

इससे पचो को सन्देह हो गया कि अवश्य दाल मे काला है। उन्होने रसोइये को पूछा कि क्या लापसी मे जहर है ?

वह कहने लगा, 'नहीं साहब, कौन कहता है कि लापसी मे जहर है ?'

उससे भी कहा गया कि ऐसा है तो तुम पहले जीम लो। रसोइया सोचने लगा – सभव है, मैं इधर–उधर चला गया होऊ, तब किसी ने जहर मिला दिया होगा तो मैं फिजूल ही मारा जाऊ। अत उसने भी पहले जीमने से इन्कार कर दिया।

पचो का सन्देह बढता गया। सेठ का मुह उतर गया। उसने सोचा – गजब हो गया। सारा किया–कराया गुड गोबर हो गया। हजारो का खर्च बेकार हुआ। आखिर कुछ समझदार व्यक्तियो ने पूछताछ शुरू की कि यह बात कहा से उठी है ? जिससे पूछा

वह कहने लगा कि मुझे तो अमुक व्यक्ति ने कहा। उससे पूछा गया तो उसने दूसरे का नाम बताया। दूसरे ने तीसरे का नाम बताया। यो बात पहुची उस बीमार सेठ तक।

उस सेठ को बुला कर पूछा गया कि क्या आपने कहा था कि लापसी मे जहर है? उसने कहा – हा, कहा था।

'तो क्या आपने जहर डालते हुए देखा था ?'

'नहीं ! वैद्य जी ने कहा था कि लापसी मे जहर है।'

उन्होने सोचा कि सम्भव है जहर की पुडिया वैद्यजी के यहा से गई हो। उन्हे बुलाकर पूछने से पता लग सकेगा। वैद्य जी से पूछा गया कि आपके यहा से जहर की पुडिया गई है क्या ?

वैद्य जी ने कहा – 'मेरे यहा से तो जहर की पुडिया नहीं गई।'

'तब आपने सेठजी को कैसे कहा कि लापसी मे जहर है ?'

वैद्य जी हँसने लगे। उन्होने कहा, सेठजी के मेरी दवाई चल रही थी, उस दवाई पर गुड, तेल, खटाई खाने की मनाही है। इसलिए जब सेठजी ने मुझे लापसी खाने को पूछा तो मैने कहा कि 'आपके लिए लापसी मे जहर है।' लापसी मे गुड है, इसलिये उनको खाने की मनाही की थी।

पचो ने कहा कि वैद्य जी ! आपको विश्वास है कि लापसी मे जहर नही है तो आप पहले जीम लीजिए। वैद्य जी ने सोचा

कि मेरे यहा से विष की पुडिया गई नही है और न इस प्रकार की कोई सभावना ही है। व्यर्थ की बात चल पडी है। इसलिए वैद्य जी ने पहले भोजन कर लिया। फिर सब लोगो ने लापसी का भोजन किया।

बन्धुओ! ऐसी व्यर्थ की बाते नही करनी चाहिए। किस प्रसग से कौनसी बात कही गई है, इसका पहले निर्णय कर लेना चाहिए। व्यर्थ की बाते बना कर दूसरे के कलेजे मे तीर नही चुभाने चाहिए। जो लोग ऐसा करते है उनके चिकने कर्मों का बध होता है। सहज मे उन कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता। अतएव उनको चाहिए कि इन पर्व दिनो मे सब इस प्रकार के आश्रवो से बचे।

आश्रव को रोकिये

भाइयो! आत्मा की स्वच्छता के लिये यह आवश्यक है कि पहले आश्रव के द्वारो को रोका जाय। मान लीजिये, एक स्वच्छ जल का कुड है लेकिन उसमे गटर की नाली का गदा पानी मिल रहा है। आप उसकी सफाई करना चाहते है तो पहले उस गटर की नाली को रोकना होगा। जब तक वह नाली गदा पानी कुड मे डालती रहेगी, तब तक कुड की सफाई नहीं हो सकती। ऐसे ही जब तक पापो के आश्रव–द्वारो को बद नही करेगे तब तक आत्मा को स्वच्छ करने का प्रयास निरर्थक होगा। यह आध्यात्मिक सप्ताह–यह पयुर्षण पर्व आया है, इसमे आप पाप की नालियो को रोकिये। वैर–विरोध को भूल जाइये। सब जीवो के साथ मैत्रीभाव रखिये। अन्त करण के विकारो को हटाइये। म–

की मलिनता को धो डालिये। हृदय को साफ सुथरे दर्पण के समान स्वच्छ बना लीजिये। ऐसा करने से आत्मा पर पडी हुई पाप कर्मों की शिलाए हट जाएगी और आप एक अनूठा हलकापन महसूस करेगे। आपकी आत्मा उज्ज्वल बनेगी और तब आपको अपूर्व आनद की अनुभूति हो सकेगी। आप अपने विवेक से ससार के पदार्थों की असारता को समझिये और आत्मा की अलौकिक विभूति के दर्शन कीजिये । आप सासारिक पदार्थों से मोह को हटाने का प्रयत्न करेगे तो ही आपको अखूट वैभव के दर्शन हो सकेगे। इस सम्बन्ध मे एक ऐतिहासिक प्रसग प्रेरणादायक है। वह इस प्रकार है –

द्विमुख महाराजा की विरक्ति

महाराजा जयवर्धन कम्पिलपुर मे भव्य व्यवस्था के साथ राज्य कर रहे थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, जिसका नाम मदनमजरी था। नाम के अनुसार ही उसने रूप पाया था। सात भाइयो के बीच एक बहिन हो तो उसके प्रति कितना आह्लाद भाव होता है। आज की स्वार्थमयी दुनिया मे भले ही ऐसा न हो परन्तु उस समय यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात मानी जाती थी। आज तो दस भाइयो के बीच एक वहिन हो, वह भी भार रूप प्रतीत होती है। यह दु ख का विषय है और स्वार्थ की पराकाष्ठा ह। मदनमजरी सात भाइयो के वीच वडे आनन्द मे रह रही थी।

एक दिन महाराजा जयवर्धन राजसभा मे वैठे हुए थे। उनका दूत देशाटन करके आया था। महाराजा ने उससे पूछा कि

अन्य देशो मे तुमने क्या सुना ? क्या देखा ? दूत ने कहा – महाराज ! सर्वत्र आपकी प्रशसा हो रही है।

महाराज बोले मैं अपनी तारीफ नहीं सुनना चाहता। मै यह जानना चाहता हू कि तुमने क्या अनोखी वस्तु देखी है ?

दूत बोला – वत्स देश के राजा शतानीक ने अपने राज्य मे बहुत सी चित्रशालाए बना रखी हैं। वे बडी सुन्दर और रमणीय हैं। अपने राज्य मे भी ऐसी सुन्दर चित्रशाला होनी चाहिए।

महाराज ने आदेश दिया कि ऐसी चित्रशाला का निर्माण किया जाय जो अद्भुत हो, जिसकी सानी की कोई दूसरी चित्रशाला न हो। अद्वितीय चित्रशाला के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया। सयोगवश नींव खोदते समय एक ऐसा मुक्ता निकला जो अद्वितीय और असाधारण था। उस को साफ करके जब महाराजा ने अपने हृदय पर धारण किया तो उसमे महाराजा के दो मुख प्रतिबिम्बित हुए। इस घटना को लेकर जयवर्धन महाराज का नाम द्विमुख पड गया। उनकी देश–विदेश मे प्रशसा होने लगी।

उज्जयिनी के सम्राट् चण्डप्रद्योतन को जब इस मुक्ता के विषय मे मालूम हुआ तो वह उसे पाने के लिये ललचा उठा। उसने द्विमुख महाराज के पास दूत भेजकर कहलाया कि वह मुक्ता आप चण्डप्रद्योतन राजा को दे दीजिये। महाराजा द्विमुख ने कहा कि "मागने से कोई वस्तु नहीं मिला करती। उसकी कीमत चुकानी पडती है। यदि तुम्हारे राजा अपनी महारानी, रथ और हाथी मुझे दें तो मै यह मुक्ता उन्हे दे सकता हूँ।"

दूत मुह बिगाडता हुआ चला गया। राजा चण्डप्रद्योतन को उसने सारी बात कही। राजा चण्डप्रद्योतन क्रोध के मारे आग उगलने लगा। उसने बहुत बडी सेना लेकर द्विमुख महाराज पर आक्रमण कर दिया।

जयवर्धन राजा ने सोचा कि मुझे आक्रान्ता नही बनना है किन्तु आक्रमण का मुकाबला कर आक्रान्ता को हटाना है। उन्होने अपनी सेना सजाई और चण्डप्रद्योतन को परास्त कर बदी बना लिया।

राजा चण्डप्रद्योतन जेल मे बद था। उसको खाने – पीने की सारी सुविधाए दी जा रही थी परन्तु परतत्रता का दु ख उसे पीडित कर रहा था। वह जेल मे बैठा हुआ तिलमिला रहा था।

एक दिन राजा चण्डप्रद्योतन जहा बन्द था, उसकी ऊपरी मजिल पर वह घूम रहा था कि उसकी दृष्टि अचानक राजमहल के झरोखे मे बैठी हुई राजकन्या पर पडी। वह देख कर मोहित हो गया। उसके मन मे सकल्प–विकल्प चलने लगे। हालाकि वह जेल मे बन्द था तदापि वह उस राजकन्या के प्रति अति आसक्त बन गया। उसकी भूख मन्द पड गई, प्यास जाती रही, शरीर सूखने लगा, मुख कुम्हलाने लगा। महाराजा जयवर्धन यदा–कदा उसे सभालने और देखने आया करते थे। एक दिन महाराजा जेल मे पहुचे और उन्होने चण्डप्रद्योतन की यह दुर्दशा देखी।

उन्हाने चण्डप्रद्योतन से पूछा कि राजन् ! तुम्हारी यह अवस्था क्यो हो गई है ? क्या जेल मे खान–पान की समुचित

व्यवस्था नही है ? कोई रोग उत्पन्न हो गया है क्या ? आपको क्या चिन्ता सता रही है।

चण्डप्रद्योतन के नेत्र शर्म से झुक गये। वह जमीन कुरेदते हुए बोला – राजन् ! क्या कहू ? मन की बात कहना निरर्थक है क्योकि उसकी पूर्ति होने की कोई सभावना नही है।

जयवर्धन – राजन् ! मै अनीति का प्रतिकार करने वाला हूॅ। आक्राता को हटाने मे मै वज्र सरीखा कठोर हू परन्तु दुखियो को देखकर फूल के समान कोमल बन जाता हू। आप अपने मन की बात कहिये, मैं यथाशक्ति उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करूगा।

चण्डप्रद्योतन ने कहा, "क्या बताऊ राजन् ! कह नहीं पा रहा हॅू और कहे बिना कोई दूसरा चारा भी नहीं है। आपके राजभवन मे राजकन्या को देख कर मेरा मन डॉवाडोल हो गया है और इसी कारण से मेरी दुर्दशा हो गई है।"

महाराजा जयवर्धन सोचने लगे कि – राजा चण्डप्रद्योतन उज्जयिनी के नरेश हैं, शक्तिसम्पन्न है लेकिन इनकी नीति ठीक नहीं थी। भौतिक सुख साधन सामग्री की कोई कमी नहीं है। यह केवल अपने जीवन को ठीक–ठाक सभाल नही पाया है। यदि यह अपनी दुर्नीति का परित्याग कर दे, यदि यह अपना परिमार्जन कर ले तो राजकन्या का विवाह इनके साथ करने मे कोई बाधा नहीं रहती।

उन्होने चण्डप्रद्योतन से कहा "राजन् ! यदि आप अपनी आक्रान्ता नीति छोड दे, यदि आप भविष्य मे किसी पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा करे तो मै राजकन्या का विवाह आपके साथ कर सकता हूँ।

चण्डप्रद्योतन ने ऐसा प्रण किया और महाराजा ने उसे जेल से मुक्त कर बडी उमग के साथ मदनमजरी का विवाह उसके साथ कर दिया। हथलेवा छुडाते समय उज्जयिनी का राज्य उसे लौटा दिया। उसे पुन राज्याधिपति नरेश बना दिया।

महाराजा द्विमुख ने इस विवाह के उपलक्ष्य मे राष्ट्रीय स्तर पर इन्द्र–महोत्सव मनाने का आयोजन किया। एक सप्ताह तक महोत्सव चलता रहा। इस अवसर पर एक इन्द्र–ध्वज बनाया गया। लकडियो के स्तभो से उसे खूब सजाया गया था। अनेक राजा–महाराजाओ को आमन्त्रित किया गया था। बडे ठाठ–बाठ से राजकीय महोत्सव मनाया गया। महोत्सव की सानन्द समाप्ति हुई। सब अपने–अपने स्थान पर चले गये। इन्द्रध्वज की सजावट उतर चुकी थी। सजावट के काम आई हुई लकडिया अब अस्त–व्यस्त इधर–उधर पडी हुई थीं।

एक दिन महाराजा द्विमुख उधर से होकर घूमने निकले। उन्होने व लकडिया अस्तव्यस्त अवस्था मे देखीं। उन्होने मत्री से पूछा। मत्री ने कहा – "स्वामिन् ! महोत्सव के समय जो इन्द्रध्वज बनाया गया था उसकी सजावट मे इनका प्रयोग किया गया था।" महाराजा को विचार आया – अहा ! ये लकडिया उस दिन

कितनी रमणीय और सुन्दर प्रतीत हो रही थीं और आज ये कैसी अस्तव्यस्त सी लग रही है। अहो ! मेरे जीवन की दशा भी इस प्रकार परिवर्तित हो सकती है। मै अभी वस्त्राभूषण से अलकृत होकर सुन्दर लग रहा हूँ परन्तु कभी मेरी दशा मे भी परिवर्तन आ सकता है। अतएव मुझे अभी से सावधान हो जाना चाहिये और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि मेरा शाश्वत सौन्दर्य कायम रहे। शारीरिक सौन्दर्य परिवर्तनशील और क्षणभगुर है। मुझे आत्मिक सौन्दर्य को प्राप्त करना है जो शाश्वत है।'

ऐसा विचार कर महाराजा द्विमुख राज्य को छोडकर विरक्त बन गये। वे आत्मसाधना के मार्ग पर चल पडे। उन्होने अपनी आत्मा को स्वाभाविक सद्‌गुणो से सजाया। उन्होने शाश्वत सौन्दर्य को पा लिया। वे कर्मों के बन्धनो से मुक्त हो गये।

द्विमुख महाराजा की विरक्ति हमारे सामने आदर्श के रूप में उपस्थित है। उससे हमे प्रेरणा लेनी चाहिए और अपनी आत्मा को भी शाश्वत सौन्दर्य से समलकृत करना चाहिये।

तीन प्रकार की मक्खिया

आप जानते है कि ससार मे मक्खियो के कई प्रकार है किन्तु मुख्यतया तीन प्रकार की मक्खिया पाई जाती हैं। एक मक्खी का स्वभाव होता है कि वह नासिका के श्लेष्म पर ही बैठती है। उस श्लेष्म मे न तो मिठास होता है और न सुगध ही, तदपि वह मक्खी बार–बार उडाने पर भी मैल पर ही बैठती है। उसमे फस कर वह तडफ–तडफ कर मर जाती है परन्तु उस श्लेष्म पर

बैठना वह नहीं छोडती। दूसरी मक्खी स्वभावत शहद पर ही बैठती है। वह शहद के मिठास पर ललचाती है और उस पर बैठती है। शहद का मिठास लेते–लेते वह मक्खी उसमे फस जाती है और अपने प्राणो को गवॉ बैठती है। इन दोनो प्रकार की मक्खियो में स्वतत्र रूप से उडने की शक्ति होती है परतु आसक्ति के कारण ये उसमे लिप्त होकर अपनी जिन्दगी बरबाद कर देती है।

एक तीसरे प्रकार की मक्खी होती है जो मिश्री की डली पर बैठती है। वह उस डली पर बैठ कर मिठास का आस्वादन करती है लेकिन जरा सी आहट या ठेस लगते ही मिश्री का मोह छोड कर आकाश मे उड जाती है।

इन तीनो प्रकार की मक्खियो में से कौनसी मक्खी आप की दृष्टि मे उत्तम है ? जो मिठास लेकर उड जाय वह उत्तम है या मैल या शहद मे फस कर मर जाय, वह अच्छी है ? आप सहज ही कह देगे कि मिठास लेकर उड जाने वाली मक्खी अच्छी है।

बन्धुओ ! मक्खियो के इस रूप को मानवो पर घटित कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अधिकाशत मानव मैल की मक्खी की तरह ससार के विषय–कषायो मे फस कर अपने जीवन को बर्बाद कर रहे है। वे भिखमगो की तरह इधर–उधर भटकते रहेगे किन्तु त्यागमार्ग की ओर लगने की भावना उनमे जागृत नही होती। वे ससार के दुखो मे फस कर अपने जीवन को नष्ट कर डालते है।

ससार के नाटक बडे विचित्र है। हमे तरह–तरह के सासारिक दु खो के किस्से सुनने को मिलते है। सासारिक जन

अपना दुखडा हमे सुनाते है। उनकी दयनीय दशा पर हमे तरस आता है। फिर भी वे लोग ससार के मायाजाल मे फसे रहते है। उनमे इतना सामर्थ्य नहीं जागता कि वे मायाजाल को छोडकर निवृत्ति के मार्ग पर आ जावे। कोई विरले ही व्यक्ति त्यागमार्ग के पथिक बनते है।

कई चक्रवर्ती सम्राट् और धन वैभव से सम्पन्न व्यक्ति शहद की मक्खी की तरह सासारिक पदार्थों का आनन्द लेने जाते हुए उनमे फस कर आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। वे अन्त समय मे हाय–हाय करते रहे लेकिन विषयो के कीचड से ऊपर न आ सके।

मिश्री की मक्खी की तरह थे धन्ना और शालिभद्र। इनकी ऋद्धि–समृद्धि का कोई पार नही था तदपि समय आते ही ये आत्मसाधना के लिए निकल पडे। वर्तमान मे भी अनेक सत–सतीजी ऐसे हैं जो सासारिक मायाजाल को छोडकर सयम–मार्ग की निर्मल आराधना कर रहे हैं। आप भी मिश्री की डली पर बैठने वाली मक्खी से प्रेरणा ले और ससार के मायाजाल मे आसक्त न होते हुए आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर बने।

पर्युषण पर्व के प्रसग से आपको आत्म–साधना का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। मैं देशनोक की जनता को सम्बोधित कर कहना चाहता हू कि पर्युषण की त्रिवेणी मे अवगाहन कर अपनी आत्मा के मैल को धो डालिये। किसी भी जाति, पथ, मजहब व्यवसाय का भेद यहा नहीं है। गगा सबके लिए पवित्र है।

तरह पर्युषण केवल जैनो के लिये ही नहीं है, सब प्राणियो के लिये है। सब प्राणी इसकी आराधना करके आत्मकल्याण के अधिकारी हो सकते है। इन आठ दिनो मे आप सप्त व्यसनो का त्याग करे, झूठ, छल–कपट–फरेब से बचिये, किसी प्राणी के मन को न दुखावे। यदि कभी ऐसा प्रसग आ जाय तो उससे तत्काल क्षमा याचना कीजिए। आप इस प्रकार अपने जीवन को शुद्ध स्वच्छ बनाने का प्रयास करेगे तो आपको अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो सकेगी और देशनोक ग्राम धन्य हो जायगा।

यह देशनोक ग्राम देश की नाक है। इसके अनुरूप ही यहा धर्माराधना हो रही है और होती रहेगी, ऐसी आशा है। आप अपने जीवन को इस पावन प्रसग से निर्मल बनाने की दिशा मे प्रयत्नशील बने। यही मेरी भावना है।

स्वयं का दायित्व

मेरा काम उपदेश देना है, मार्ग बताना है परन्तु उस पर चलना तो आपका स्वय का काम है। यह आपका दायित्व है कि अपना उद्धार स्वयमेव करे।

एक व्यक्ति कमरा बद कर रजाई ओढे सो रहा है। वह ऑखो पर पट्टी बाध लेता है और फिर चिल्लाता है कि इस कपडे ने मेरी ऑखे बाध दी है, रजाई ने मुझे ढक लिया है, कोई आकर मुझे बचाओ। अन्दर से साकल लगी हुई है। दूसरा व्यक्ति अन्दर नहीं जा सकता। बाहर से कोई व्यक्ति उसे सुझाव देता है कि अरे भाई ! तुमने अन्दर से साकल लगा रखी है, रजाई तुमने ओढ रखी

है, आखो पर पट्टी तुमने बाध रखी है। अपने हाथो से ही पट्टी ढीली कर लो, रजाई फेक दो, अन्दर की साकल खोल दो, बाहर की हवा लो, स्वयमेव तुम मुक्त हो जाओगे। वह कहता है कि मैं तो यह सब नहीं कर सकता, आप ही मेरी मदद कीजिये। ऐसे व्यक्ति के विषय मे आप क्या सोचेगे ? यही न कि वह मूर्ख है। ठीक इसी तरह अपने-अपने कर्मों के आवरण को हम स्वयमेव हटाने मे समर्थ है, दूसरा कोई नहीं। दूसरा व्यक्ति केवल निमित्त बन सकता है। मूल काम तो हमे स्वय ही करना है। जिसने कर्म बाधे हैं, वही उन्हे तोडने की भी क्षमता रखता है। आप अनन्त शक्तिशाली है, आप मे अनन्त पौरुष है। आवश्यकता है केवल उसे प्रकट करने की। अतएव अपना उद्धार अपने ही हाथो मे है।

उद्धरेदात्मनात्मानम्

–गीता

अपने उद्धार का दायित्व हमारा ही है, अन्य किसी का नहीं।

उपसहार

आत्मतत्त्व के अन्दर झाककर देखिये। वहा आपको अनन्त सुख का महासागर लहराता हुआ दिखाई देगा। आत्मा के अन्दर गहराई मे जाइये। वहा आपको शाश्वत सौन्दर्य के दर्शन होगे, वहा आपको ज्ञान–दर्शन–सुख और शक्ति का अक्षय कोष प्राप्त होगा। आप जरा बाहर से हट कर अन्दर देखना सीखो। बाह्य दृष्टि

ही आपको उस विराट् स्वरूप के दर्शन होंगे जो अपने आप मे अनूठा है। प्रार्थना की कडियो मे भी यही सकेत किया गया है –

श्री जिनराज सुपार्श्व पूरो आश हमारी।

सुपार्श्वनाथ प्रभु से भक्त यही कामना करता है कि प्रभो, मेरी आशा को पूर्ण करो। भक्त की आशा क्या होती है ? बाह्य पौद्गलिक पदार्थों की आशा करने वाला भक्त नहीं है। वह तो सौदागर है। भक्त तो सर्वस्व समर्पण करता है। वह केवल यही कामना करता है कि हे प्रभो ! तुमसे जो मेरी दूरी है वह दूर हो ! मै और तुम एकाकार हो जावे ! यही सच्चे भक्त की आशा होती है।

आप भी सासारिक पदार्थों से ममता हटा कर आत्मा को देखे, उसकी अनन्त शक्तियो को पहचाने और प्रबल पुरुषार्थ द्वार उस मगलमय स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयास करे। आत्मा के शाश्वत सौन्दर्य का आनन्द ले। यही पर्युषण पर्व का प्रेरक सदेश है।

देशनोक
2–6–75

❋❋❋❋

अन्तर्दृष्टि का उद्घाटन

जय जय जगतशिरोमणि, हूँ सेवक ने तू धणी।
अब तोसू गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।।
मुझ पर मेहर करो, चन्द्रप्रभु जगजीवन अतरजामी।
भव दु ख हरो, सुणिये अरज त्रिभुवन स्वामी।।

यह चन्द्रप्रभु परमात्मा की प्रार्थना है। जिनकी चन्द्र की ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल यशोराशि अखिल ब्रह्माण्ड मे व्याप्त है, इस विशाल ब्रह्माण्ड से परे जिसने अनन्त आकाश को छुआ है, ऐसे परमात्मा को कवि ने जगत् शिरोमणि के नाम से सम्बोधित किया है। जगत् के सिर पर अर्थात् लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्ध क्षेत्र की मणि के रूप मे परमात्मा का स्मरण किया गया है। वह परमात्मा लोक के सर्वोच्च स्थान पर विराजमान है अतएव जगत् शिरोमणि है। इतना ही नही उन परमात्मा ने आत्मा की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लिया है, इसलिए वे जगत्–शिरोमणि है, जगत् के नाथ है। उन परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट निर्मल केवलज्ञान रूपी दर्पण मे समग्र चराचर विश्व सम्पूर्ण सूक्ष्म–बादर पदार्थ प्रतिबिम्बित होते है। उनकी ज्ञान–रश्मिया सारे लोकालोक मे व्याप्त होती है। उसमे सम्पूर्ण जगत्–समाविष्ट हो

जाता है। परमात्मा का स्वरूप विराट् है। उस विराट् स्वरूप का चेन्तन सर्वसाधारण व्यक्ति नही कर पाता। अतएव साधक भक्त अपनी क्षमता के अनुसार अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार परमात्मा के अलग–अलग गुणो को लेकर अलग–अलग रूप मे अपनी भावना व्यक्त करता है।

ससीम और असीम :

मनुष्य का मस्तिष्क सीमित है, सोचने की क्षमता अधूरी है और वह भी अनुभूतिपूर्वक प्राप्त की हुई नही है। अपूर्ण और सीमित शक्ति वाला मानव परिपूर्ण, असीम और अनुभवगम्य परमात्मा का चिन्तन भली–भाति नही कर पाता। मानव ससीम है, परमात्मा असीम है। मानव अपूर्ण है, परमात्मा पूर्ण है। मानव बिन्दु है, परमात्मा सिन्धु है। मानव देश काल की मर्यादाओ मे आबद्ध है, परमात्मा सर्वतत्र स्वतत्र है। मानव क्षुद्र है, परमात्मा विराट है। मानव स्थूल दृष्टि वाला है परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव–गम्य है। ऐसी स्थिति मे परमात्मा का यथावत निरूपण करना मानव की शक्ति से परे है। इसीलिए आचाराग सूत्र मे कहा गया है –

'सव्वे सरा नियट्टन्ति'
'तक्का तत्थ न विज्जइ'

—आचाराग

शब्दो मे यह सामर्थ्य नही कि वे परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप को व्यक्त कर सके। वहा शब्दो की गति नही है। सब स्वर शात

हो जाते है। तर्क की वहा पहुच नही है। छदम्स्थ की बुद्धि उसे यथार्थ रूप मे ग्रहण नहीं कर सकती। विकल्पो का यह विषय नहीं। इसी बात को वैदिक ग्रन्थो मे भी इसी तरह प्रतिपादित किया गया है –

'नेति नेति सब वेद पुकारे'

परमात्मा का स्वरूप 'ऐसा नहीं है,' 'ऐसा नही है' इस रूप मे ही व्यक्त किया जा सकता है। 'वह कैसा है' वह विषय शब्दो और विकल्पो की परिधि से बाहर है। वह केवल अनुभवगम्य है। गूगा व्यक्ति गुड के स्वाद का अनुभव कर सकता है परन्तु उस स्वाद के स्वरूप का कथन नहीं कर सकता है। यही बात परमात्मा के यथावत स्वरूप के निरूपण के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए।

अन्तरग दृष्टि की आवश्यकता

स्थूल दृष्टि से स्थूल पदार्थों को देखा जा सकता है। जो पदार्थ सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है तथा क्षेत्र एव काल से अन्तरित (व्यवहृत) हैं, उन्हे हमारी स्थूल दृष्टि नहीं जान पाती। चमडे की आखे उन्हे नहीं देख पातीं। उन्हे देखने के लिये अन्तरग दृष्टि की आवश्यकता रहती है। स्थूल नेत्र स्थूल चीजो का साक्षात्कार कर सकते है, वे इन्द्रियातीत तत्त्वो को जानने मे असमर्थ है। जगत् शिरोमणि परमात्मा अतीन्द्रिय है, अतएव उसे जानने के लिये अन्तरग दृष्टि की अपेक्षा होती है। जिस आत्मा के अन्त करण मे सम्यक्त्व भाव का उदय हुआ है, समभाव के धरातल पर जिसका चिन्तन चल रहा है, शुभ–अशुभ का विवेक जहा जागृत हो चुका

है, उसको अन्तरग दृष्टि प्राप्त हो जाती है, उसके हृदय के नेत्र खुल जाते है। उसको आभ्यन्तर दिव्य नेत्रो की उपलब्धि हो जाती है। इस आभ्यन्तर दिव्य दृष्टि से वह परमात्मा को, जगत् को और स्वय के चरम एव परम लक्ष्य को देखने का प्रयत्न करता है और क्रमश इस दिशा मे आगे बढता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त भी कर लेता है।

समदृष्टि के नौ नेत्र ·

स्थूल शरीर मे साधारणतया दो ही नेत्र होते है लेकिन जब अन्तर–आत्मा मे समभाव की जागृति होती है तो उसे आन्तरिक नौ नेत्रो की उपलब्धि हो जाती है। इन आन्तरिक नेत्रो के खुल जाने से वह जगत् के पदार्थों को यथार्थ रूप मे जानने लग जाता है।

1 अडोल विश्वास

जब सम्यग् दृष्टि आत्मा समभाव के साथ जगत् शिरोमणि परमात्मा की परम उत्कृष्टता का अनुभव करने लगता है, तब उसका लक्ष्य स्थिर बनता है। वह अपनी आत्मा को सर्वोच्च स्थिति पर पहुचाने की अभिलाषा करता है। वह मुमुक्षु बनता है। वह स्वय जगत्–शिरोमणि बनने के लिये स्पृहालु होता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप और मोक्ष के प्रति उसे अडोल विश्वास होता है। वह अपने अन्तरग नेत्र द्वारा आत्मा के विराट् स्वरूप को देखता है। इस प्रकार का अडोल विश्वास हो जाना ही प्रथम आन्तरिक नेत्र का खुल जाना है।

2 उत्कृष्ट श्रद्धान

आत्म–स्वरूप के प्रति दृढ विश्वास हो जाने के पश्चात् आत्मा की विचारधारा उत्तरोत्तर आगे बढती रहती है। इस अवस्था मे आने पर वह विश्व के समस्त प्राणियो के साथ आत्मीय भाव स्थापित करता है। वह समझने लगता है कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही अन्य प्राणियो की भी है। विकास की दृष्टि से चाहे कोई आत्मा छोटे रूप मे हो अथवा बडे रूप मे, परन्तु मूलत सब आत्माए समान है। जैसे सुख मुझे इष्ट है, दु ख अनिष्ट है, उसी तरह अन्य आत्मा को भी सुख प्रिय है और दु ख अप्रिय है। ऐसा समझ कर वह सब जीवो को 'अप्पा सो परमप्पा' के रूप मे देखता है। वह स्वय अभय बन कर दूसरे जीवो को अभय प्रदान करने का मनोरथ करता है। वह मानता है कि मेरा वह दिन धन्य होगा जब मै सब जीवो को अभय देने वाले मार्ग पर चल पडूगा। इस प्रकार की उत्कृष्ट भावना होना उत्कृष्ट श्रद्धान होना, द्वितीय आन्तरिक नेत्र का खुल जाना है।

3 सयमी जीवन के प्रति जागृति

सब आत्माओ के साथ आत्मीय भाव स्थापित करने की भावना के पश्चात् स्वभावत सयमी जीवन के प्रति रुचि जागृत होती है। वह मानने लगता है कि सयमी जीवन ही साधना की उत्कृष्ट अवस्था है। सर्वज्ञ–सर्वदर्शी परमात्मा ने सयमी जीवन के लिये जो नियमोपनियम निर्धारित किये है, उनका वह सम्यग्ज्ञान करता है, उनको हितावह मानता है और उनके प्रति सावधानी और

जागृति बरतता है। ऐसी स्थिति मे उस सम्यग्दृष्टि आत्मा का तृतीय आन्तरिक नेत्र खुल जाता है।

4. नीतिमत्ता

आध्यात्मिक विकास के भवन का निर्माण नीति की नींव पर हुआ करता है। यदि जीवन मे नैतिकता नही है तो वहा आध्यात्मिकता आ ही नही सकती। नीति–रहित आध्यात्मिकता ढोंग मात्र है। नैतिकता आध्यात्मिक जीवन की बुनियाद है। सम्यग्दृष्टि आत्मा नीतिमय हो और समाज मे सर्वत्र नीतिमय वातावरण हो। वह स्व–जीवन और जन–जीवन मे नैतिकता का भव्य रूप देखना चाहता है। जनता मे यदि नैतिकता है, यदि वह एक–दूसरे से सहयोग कर ईमानदारी से चल रही है, तो सारा वातावरण शातिमय होगा और ऐसे शान्त वातावरण मे समुचित रूप से आध्यात्मिक साधना सभव हो सकती है। अतएव सम्यग्दृष्टि साधक नीतिमत्ता को आत्मविकास का अग मानकर चलता है। यह नीतिमय दृष्टि सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ आन्तरिक नेत्र को विकसित करती हैं।

5 नैतिकता का दृढ आग्रह

विश्व मे मानवता के मनोहर अकुर को पल्लवित और पुष्पित करने वाली सामग्री नैतिकता ही है। सम्यग्दृष्टि आत्मा स्वय के और जनता के जीवन मे नैतिक नियमो को साकार रूप मे देखना चाहता है। उन नियमो मे यदि कहीं स्खलना होती है,

त्रुटि होती है, तो वह उसे असह्य लगती है। वह नैतिकता का दृढ आग्रही होता है। वह सूक्ष्मता से स्खलना का अध्ययन करता है और उसके परिमार्जन की क्षमता भी रखता है। इस प्रकार की भावना का होना पचम नेत्र का खुलना है।

6 नैतिक जीवन के सरक्षक की आवश्यकता

ससार मे विविध प्रकृति के व्यक्ति हुआ करते है। सबकी मानसिक और नैतिक स्थिति एक सी नही होती। कोई व्यक्ति प्रकृतित सात्विक और सद्गुणी होता है तो कोई व्यक्ति आपराधिक वृत्ति का होता है। समाज की व्यवस्था का सचालन करने हेतु यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत मर्यादाओ के अन्तर्गत चले। यदि कोई व्यक्ति इस मार्यादा का अतिक्रमण करता है तो उसको अनुशासित करने के लिये तथा समाज मे सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये किसी नायक की, नेता की, राजा की या अन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति की आवश्यकता होती है। समाज मे नैतिक नियमो का निष्ठापूर्वक पालन हो, समाज मे सुव्यवस्था बनी रहे और सब लोग शान्ति के साथ अपने–अपने कर्तव्यो का निर्वाह करते रहे, ऐसी सुन्दर राज्य व्यवस्था की आवश्यकता को सम्यग्दृष्टि आत्मा अनुभव करता है। नीति के विस्तार की इस भावना के कारण उसका छठा आन्तरिक नेत्र उद्घाटित हो जाता है।

7 नेतृत्व का परीक्षण

सम्यग्दृष्टि आत्मा समाज की सुव्यवस्था के लिये सुयोग्य नेतृत्व की आवश्यकता को महसूस करता ह परन्तु साथ ही [illegible]

नेता को कसौटी पर भी कसता है। उसके जीवन मे जनता के प्रति आत्मीय भावना है या नही, जन–मानस को समझ कर चलने की क्षमता उसमे है या नही, जन–कल्याण के लिये उसके जीवन का सिद्धान्तो के साथ तालमेल है या नही, यह सब सम्यग्दृष्टि आत्मा सूक्ष्मता के साथ अवलोकन करता है। ऐसी क्षमता आ जाने पर उसका सप्तम आन्तरिक नेत्र खुल जाता है।

8. आत्म-निरीक्षण

सम्यग्दृष्टि आत्मा बाह्य–जगत् का ही निरीक्षण–परीक्षण नही करता अपितु वह आत्मा का निरीक्षण परीक्षण करता है। वह अपने मे रहे हुए दोषो को देखता है, उनका परिमार्जन करने का प्रयत्न करता है। यह आत्म–परीक्षण उसके सशोधन के मार्ग को प्रशस्त बनाता है। जो व्यक्ति अपने दोषो का दर्शन ही नही करता, वह उनका परिष्कार कैसे कर सकेगा ? सम्यग्दृष्टि आत्मा आत्म–निरीक्षण और परीक्षण करता है। यह आत्म–निरीक्षण की दृष्टि ही अष्टम आन्तरिक नेत्र है।

9. अलिप्तता

सम्यग्दृष्टि आत्मा की यह विचारधारा है कि 'जब तक मै साधना के पथ पर, सयम के मार्ग पर अग्रसर न हो सकू, वहा तक जग–व्यवहार की विविध प्रवृत्तियो को करता हुआ भी मै उनसे अलिप्त रहू। कौटुम्बिक दृष्टि से विविध कर्तव्यो का निर्वाह करना आवश्यक होता है परन्तु उनको करता हुआ भी मै उनमे लिप्त और

आसक्त न होऊ।' सम्यग्दृष्टि की इस विचारधारा को निम्न दोहे मे ठीक ढग से व्यक्त किया गया है –

सम्यग्दृष्टि जीवडो, करे कुटुम्ब–प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, धाय खिलावे बाल।।

इस प्रकार की अलिप्त भावना का विकास होने पर उसके नौवे आन्तरिक नेत्र का प्रकटीकरण होगा।

सम्यग्दृष्टि आत्मा को जब ये आन्तरिक नेत्र प्राप्त हो जाते है तो वह अन्तरग दृष्टि से परमात्मा के स्वरूप को भलीभाति हृदयगम कर लेता है और क्रमश सयम मार्ग की साधना करता हुआ स्वय जगत्–शिरोमणि बन जाता है।

सेव्य-सेवक का भेद

प्रार्थना मे कहा गया है कि–

'जय जय जगत् शिरोमणि, हु सेवक ने तू धणी।'

हे जगत् शिरोमणि। मै सेवक हूँ और तू स्वामी है। यह सेवक–स्वामी का भेद साधना की अवस्था को लेकर है। जब साधना सफल हो जाती है तो यह भेद मिट जाता है और साधक स्वय स्वामी और जगत् शिरोमणि बन जाता है।

यह सेव्य और सेवक का भेद मिटाने के लिये पर्युषण पर्व के दिन आये है। आज पर्युषण पर्व का द्वितीय दिवस है। इन दिनो मे आप अन्तगड सूत्र के माध्यम से ऐसे महापुरुषो का जीवन–चरित्र श्रवण कर रहे है, जिन्होने साधना करके इस सेव्य–सेवक के भेद

को मिटा दिया है और जो जगत्–शिरोमणि बन कर लोक के सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हो गये है।

अन्तगड का पुन. पुन वाचन क्यों ?

पर्युषण पर्व के आठ दिनो मे अन्तगड सूत्र के वाचन की परिपाटी सुदीर्घ काल से चली आ रही है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि इस सूत्र मे ऐसे महापुरुषो और महा–महिलाओ का जीवन वृत्त दिया गया है, जिन्होने कर्म के बन्धनो को तोडकर भव का अन्त किया है, जन्म–मरण का अन्त किया है और दु ख का अन्त किया है। हमारा भी यही उद्देश्य और लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में इस सूत्र को पढने–सुनने की परिपाटी चली आ रही है।

कहा जा सकता है कि अन्तगड तो प्रतिवर्ष सुनते चले आ रहे हैं, अब कोई नवीन विषय सुनया जाय। एक ही बात सुनते–सुनते दिल उकता जाता है। नवीन के प्रति रुचि जागृत रहती है। यह बात ठीक है कि नवीनता के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा होती है परन्तु आप यह भी समझते हैं कि जब तक पूर्व का पाठ याद नही होता, तब तक आगे का पाठ नही दिया जाता है। अध्यापक पहले 'अ' अक्षर सिखलाता है। तब उसका कितनी बार उच्चारण करवाता है ? बार–बार उच्चारण करने पर जब 'अ' अक्षर पूरी तरह मस्तिष्क मे बैठ जाता है, तब आगे का अक्षर सिखाता है। वैसें ही इन आध्यात्मिक कक्षाओ के छात्र अन्तगड सूत्र की कथाओ को याद करने की दृष्टि से नहीं अपितु जीवन मे उतारने की दृष्टि से याद कर ले तो आगे का पाठ सुन्दर नीति से समझाया जा सकता

है। लेकिन जब तक अन्तगड के अन्तर्गत आये हुए कथानको के साथ जीवन का सम्बन्ध नहीं जुड जाता है, तब तक बार–बार स्मृति कराने की दृष्टि से अन्तगड का पठन और श्रवण कराया जाता है।

आचरण ही सम्यक् पठन है

महाभारत मे कौरव और पाण्डवो का एक प्रसग वर्णित है। वे विद्याध्ययन कर रहे थे। गुरुजी ने सभी विद्यार्थियो को याद करने के लिये एक पाठ दिया–'क्षमा कुरु'। साथ ही यह भी कहा कि इस पाठ को जो जल्दी याद करके लायेगा उसे आगे का पाठ दिया जायेगा। दुर्योधन आदि छात्र बडे प्रसन्न हुए कि अहो ! इसमे क्या है ? अभी सुना देते है। दो ही शब्द याद करने हैं। वे सब जल्दी–जल्दी पाठ सुनाने के लिये आतुर हो रहे थे और उन्होने एक के बाद एक 'क्षमा कुरु' बोल कर गुरुदेव को पाठ सुना भी दिया।

धर्मराज युधिष्ठिर चुपचाप बैठे हुए थे। वे 'क्षमा कुरु' पाठ सुनाने की आतुरता प्रकट नहीं कर रहे थे। अध्यापक ने पूछा, 'धर्मराज क्या बात है ? पाठ याद हुआ ?'

युधिष्ठिर ने कहा, 'गुरुदेव, अभी याद नही हुआ'।

शिक्षक ने थोडी देर बाद पुन पूछा, 'युधिष्ठर, पाठ याद हुआ ?'

'अभी याद नहीं हुआ, गुरुदेव !'

गुरुजी ने कहा, 'तुम बडे राजकुमार हो। तुम्हारी बुद्धि कितनी मद है कि छोटे–छोटे दो शब्द भी अब तक याद न कर पाये।'

धर्मराज ने विनय से कहा, 'गुरुदेव ! याद करने का प्रयास कर रहा हूँ।'

थोडा समय और बीत गया। गुरुजी ने कहा, 'युधिष्ठिर ! अब तो पाठ सुनाओ।'

'गुरुदेव ! थोडा–थोडा याद हुआ है।'

यह सुनकर गुरुजी को क्रोध आ गया और उन्होने धर्मराज युधिष्ठिर के गाल पर चाटा लगा दिया। गाल लाल हो गया। धर्मराज मुस्कराने लगे।

गुरुजी को अचरज हुआ ! वे बोले, 'तू कैसा अजीब छात्र है ! चाटा खाकर भी हँसता है, बडा ढीठ है।'

'गुरुदेव ! पाठ याद कर रहा हूँ।'

'फिर वही बात ! दुबारा गुरुजी ने चाटा कस दिया।

क्या अब भी याद नहीं हुआ ?

'याद हो रहा है, गुरुदेव !'

अध्यापक हैरान हो गये। उन्होने पूछा – 'कहा याद कर रहा है ?'

'गुरुदेव, परीक्षा दे रहा हूँ। आपने कहा था 'क्षमा कुरु' अर्थात् क्षमा करो। क्षमा कब की जाती है ? अनुकूल स्थितियो मे

क्षमा करने का प्रसग नही आता। जब प्रतिकूल परिस्थितिया सामने आती है, तब क्षमा की कसौटी होती है। जब आपने तमाचा लगाया तब क्षमा का पाठ थोडा याद हुआ। 'क्षमा करो' शब्द रट लेना कोई अर्थ नही रखता। क्षमा को जब जीवन मे उतारा जाय तो मै समझता हू कि क्षमा का पाठ याद हुआ। मै बडा राजकुमार हूँ। मैं आपको कह सकता था कि आप कौन होते है मुझे चाटा लगाने वाले ? लेकिन इस स्थिति मे मैंने क्षमा को जीवन मे उतारने का प्रयत्न किया। चाटा लगने पर भी क्रोध नही आया। मै क्षमा की कसौटी मे उत्तीर्ण रहा। अब मै कह सकता हू कि 'क्षमा कुरु' यह पाठ मुझे याद हो गया।'

यह सुनकर गुरुजी दग रह गये। उन्हे अपने प्रति क्षोभ हुआ और उन्होने युधिष्ठिर की प्रशसा करते हुए कहा कि सचमुच पाठ को आचरण मे लाना ही वास्तविक पढना है। तुम्हारे जैसे छात्र अति विरल है।

युधिष्ठिर ने जिस प्रकार 'क्षमा कुरु' पाठ याद किया उस तरह से अन्तगड सूत्र को याद करने की आपकी तैयारी हो रही है क्या ? अन्तगड मे जिन–जिन महापुरुषो का वर्णन आया है, क्या आपने उनका अन्तरग दृष्टि से अवलोकन किया है ? उन महापुरुषो की अन्तरग दृष्टि खुली हुई थी। उनके चरित्र को सम्यग् रूप से समझने के लिये हमारी और आपकी अन्तरग दृष्टि खुली होनी चाहिये।

रगो की डिबिया मे चित्र

रगो की डिबियो मे विविध रग होते है और उनके माध्यम

से चित्रकार विविध चित्रो का निर्माण करता है। इस अपेक्षा से कहा जाता है कि रगो की डिबिया मे क्या–क्या नहीं है ? उसमे हाथी है, घोडा है, रथ है, पैदल है, दुनियाभर के चित्र उसमे परोक्ष रूप से रहे हुए है लेकिन चित्रकार जब तक तूलिका द्वारा चित्र बना कर नही बताता तब तक रगो का महत्त्व समझ मे नहीं आता। वैसे ही शास्त्रीय शब्दो मे बहुत ही गूढ रहस्य रहे हुए है। उनको समझने और समझाने के लिये कुशल चित्रकार की तरह अन्तरग दृष्टि और अतरग कला की आवश्यकता है।

देवकी की खुली हुई अन्तर्दृष्टि ·

अन्तगड सूत्र के सदर्भ मे छह सहोदर भाइयो का वर्णन आया है। ये सहोदर भाई कौन है ? देवकी के अगजात। लेकिन महारानी देवकी को इसका पता ही नही था। जब उसको यह ज्ञात हुआ तो वह कितनी प्रसन्न हुई। देवकी सम्यग्दृष्टि आत्मा थी। उसके अन्दर समभाव की जागृति हुई थी। वह अन्तरग नौ नेत्रो से युक्त थी।

जब वे छह सहोदर अनगार दो–दो सघाडे (समुदाय) से भिक्षा के लिये द्वारिकाधीश के भव्य भवन मे प्रवेश करते है तो उनको आते हुए देखकर महारानी देवकी के मन मे कितना उल्लास हुआ, वह कितनी हर्ष–विभोर हुई और किस तरह वह मुनिराजो के स्वागत के लिये उनके सम्मुख गई। इस प्रकार की वृत्ति कब बनती है ? जब पूर्व वर्णित अन्तरग प्रथम, द्वितीय, तृतीय नेत्र खुले होते है तब अवश्य ऐसी वृत्ति बनती है।

देवकी समझती थी कि इस आत्मा का परम पद पर पहुचना सयम की साधना द्वारा ही होता है। ये तरुणवय वाले दोनो मुनिराज मेरे द्वार पर आये है, मुझे धन्य बनाने पधारे है। ये कल्पद्रुम के तुल्य है। ये सब प्राणियो को अभय देने वाले है। यदि मुनि रूप मे ये न होते तो थोडे व्यक्तियो को अभयदान या अन्यदान दे सकते थे परन्तु जगत् के समग्र प्राणियो को अभयदान नहीं दे सकते थे। आज ये आत्माए कितने विराट् रूप मे हैं। ये जगत् की वहुमूल्य सेवाए कर रहे है।

क्या समाज के लिये साधु भारभूत है ?

आजकल बहुत से लोग यह कहते रहते है कि साधु–सत जगत् को क्या देते है ? वे समाज के लिये भारभूत है। डॉक्टर मनुष्यो के शरीर के रोग मिटाने की सेवा करता है, अत उसकी आवश्यकता है। वकील कानूनी उलझनो को मिटाते है, अतएव वे भी समाज के लिये उपयोगी है। अध्यापक छात्रो के मस्तिष्क का परिमार्जन करते है, अतएव वे भी समाज के अनिवार्य अग है। कृषक मानवो के लिये अन्न आदि उत्पन्न करते हैं, अत उनकी आवश्यकता है। परन्तु साधु–सत समाज की क्या सेवा करते है ? न तो वे राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते है, न शारीरिक चिकित्सा करते हैं, न अध्यापक की तरह छात्रो को परीक्षा मे उत्तीर्ण कराते हैं, न वकील की तरह कार्य करते है, न कृषक की तरह उत्पादन ही करते है तो साधुवर्ग की समाज को क्या आवश्यकता है ?

यह कथन वही व्यक्ति करता है, जिसके अन्तरग नेत्र बन्द हैं, जिसके दृष्टिकोण मे स्थूल विषय ही आते हैं, जो कूपमण्डूक

की तरह सकुचित होकर भी उसे ही सर्वस्व समझता है। यह दृष्टि का वैषम्य है, मिथ्यापन है। मिथ्यादृष्टि केवल भौतिकता को ही देखता है, उसे ही परिपूर्ण समझता है। साधु–सत समाज को वह दिव्य दृष्टि प्रदान करते है जिसके प्रकाश मे वह कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकता है, अच्छे–बुरे का विवेक कर सकता है। जगत् के आगन मे शाति और सुख का सचार कर सव ता है। दृष्टि के अभाव मे ससार मे घोर सघर्ष हो सकता है, जगत् का वातावरण अशान्त, क्षुब्ध और विषाक्त हो सकता है। इस अर्थ मे साधु–सत समाज की जो सेवा करते है वह सर्वोत्कृष्ट सेवा है। इस तथ्य को कोई विवेकवान व्यक्ति चुनौती नही दे सकता।

भौतिक दृष्टि एकागी है, अपूर्ण है। इतना ही नहीं, भौतिकता का क्षेत्र अत्यन्त छोटा है जबकि आध्यात्मिक एव अन्तरग विश्व का क्षेत्र व्यापक विस्तृत है उस विराट् अन्तरग विश्व को समझने के लिये अन्तरग दृष्टि की अपेक्षा है। उससे ही वह देखा और परखा जा सकता है। उससे ही वास्तविक रीति से तत्त्वो के कार्य–कारण भाव को समझा जा सकता है। जहा हमारी स्थूल दृष्टि पहुचने मे असमर्थ होती है, वहीं से अन्तरग दृष्टि का कार्य आरभ होता है।

जगद्वैचित्र्य का कारण ·

एक ही परिवार मे रहने वाले 5 भाई हैं। उनका लालन–पालन एकसा हुआ है, खाने–पीने की साधन–सामग्री तुल्य मिली, पैतृक सस्कार एक से मिले, फिर उनमे अन्तर क्यो होता है ? एक

बुद्धिमान है, दूसरा वज्रमूर्ख है, एक सम्पन्न है, एक विपन्न है, एक स्वस्थ है, दूसरा सदा रोगी रहता है। इस विचित्रता का कोई दृष्ट कारण प्रतीत नहीं होता। भौतिक कार्य–कारण भाव से इसका समाधान नही होता। भौतिक दृष्टि यहा हार मान लेती है। इसका समाधान हमारी अन्तरग दृष्टि करती है।

न्याय मजरीकार जयन्त ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है –

जगतो यच्च वैचित्र्य सुख–दु खादि भेदत ।
कृषि सेवादि सामेऽपि विलक्षणफलोदय ।।
अकस्मान्निधिलाभश्च विद्युत्पातश्च कस्यचित् ।
क्वचित्फलमयत्नेऽपि यत्नेऽप्यफलता क्वचित् ।।
तदेतद् दुर्घट दृष्टात्कारणाद् व्याभिचारिण ।
तेनादृष्टमुपेतव्यमस्य किन्चन कारणम् ।।

–न्याय मजरी

ससार मे कोई सुखी है तो कोई दु खी है। खेती नौकरी आदि करने पर भी किसी को विशेष लाभ होता है और किसी को नुकसान उठाना पडता है। किसी को अचानक सम्पत्ति मिल जाती है और किसी पर बैठे हुए बिजली गिर पडती है। किसी को बिना प्रयत्न किये ही फल प्राप्ति हो जाती है और किसी को यत्न करने पर भी फल–प्राप्ति नही होती। ये सब बाते किसी दृष्ट कारण से नहीं होतीं अत इनका कोई अदृष्ट कारण मानना चाहिये।

बौद्ध दर्शन के ग्रन्थ मे राजा मिलिन्द और स्थविर

की गरिमा से भी विशिष्ट गरिमा–सम्पन्न है। राष्ट्रपति अपने ही राष्ट्र की सेवा करता है जबकि सन्तो का जीवन विश्व के समस्त प्राणियो की सेवा के लिये है। सत–जीवन केवल राष्ट्र के लिये ही नही अपितु समग्र विश्व के लिये हितावह होता है।

इस बात को आप अन्य रीति से समझ सकते है। एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी परवाह किये बिना अपने परिवार की सेवा मे सलग्न रहता है। एक दूसरा व्यक्ति है, जो अपने परिवार की सेवा करने के साथ ही मोहल्ले और गाव वालो की भी सेवा करता है। यह निर्विवाद है कि पहले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा व्यक्ति अधिक सेवाभावी माना जायेगा क्योकि उसकी सेवा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। इससे आगे बढकर यदि कोई अपनी सेवा के क्षेत्र को राष्ट्रव्यापी बना लेता है तो वह और अधिक सेवाभावी समझा जायेगा। तो जिसने मानव मात्र ही नही, प्राणिमात्र की सेवा का व्रत लिया है वह सर्वोत्तम सेवाभावी कहलाएगा। सतजन अपने सर्वजनहितकारी उपदेशो के द्वारा प्राणिमात्र का कल्याण करते है अतएव वे विश्व के परमोपकारी है। वे मानव–समाज के अद्वितीय सेवक और लोकहितकारी है। मानव–समाज के अभ्युदय मे और विश्व के वातावरण को शातिमय बनाने मे सतो का असाधरण योगदान है। अतएव समाज के लिये सत भारभूत नही है, अपितु आधारभूत है।

हॉ, यह बात अवश्य है कि सब साधु एक से नही होते। साधुता की कसौटी पर कस कर देखिये। यदि वह खरा उतरता

है तो ठीक है। यदि उसमे त्रुटि दिखाई देती है तो उसके परिमार्जन का प्रयत्न कीजिये। यदि फिर भी सुधार न हो तो उसे साधु की कोटि मे स्थान नहीं दिया जाना चाहिये। जिस प्रकार किसी व्यापारी के अप्रामाणिक व्यवहार से सब व्यापारियो को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, इसी तरह कदाचित् किसी साधु के जीवन मे साधु–जीवन की मर्यादा न हो तो इससे सब साधुओ को शका की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये। व्यक्ति की बुद्धि पैनी होनी चाहिये। सोने–चादी की कसौटी की तरह साधु–जीवन की कसौटी की जा सकती है। उस पर जो खरे उतरे, वे वन्दनीय और पूजनीय है।

हॉ, तो देवकी महारानी उन दोनो मुनियो को पूज्य दृष्टि से देखने लगी। वह सोचती है कि किस भाग्यशाली माता ने कल्पवृक्ष के तुल्य इनको जन्म दिया है। ये कितने सुन्दर दिख रहे हैं। तरुण वय मे साधनाा के पथ पर चल कर ये अपने जीवन को धन्य बना रहे है। मै भाग्यशालिनी हूँ, जो इनका मेरे यहॉ पदार्पण हुआ है। वह अपने भाग्य की सराहना करती हुई उन मुनिराजो के सम्मुख गई और उनको विधिपूर्वक वन्दन किया। सत्कार सन्मान के साथ उनको भोजनगृह मे लाई और बोली, 'भगवान्। भोजन ग्रहण कीजिए। आपके पवित्र चरणो से मेरा घर पावन हुआ, भोजन ग्रहण कर मुझ पर अनुग्रह कीजिए।' मुनियो ने भोजन पर दृष्टि डाली, यह जानने के लिये कि यह कल्पनीय है अथवा नही। महारानी देवकी उनके भावो को समझकर समाधान करती

है कि 'यह आहार कल्पनीय है, त्रिखडाधिपति के लिये बनाये गये केशरिया मोदक है। इनमे से ग्रहण करने की कृपा कीजिये।'

मुनियो ने कल्पनीय जानकर देवकी महारानी द्वारा दिये गये केशरिया मोदको को ग्रहण किया और गजगति से चल दिये। देवकी उन्हे द्वार तक पहुचाने आई। आज देवकी ने अपने आपको धन्य माना कि उसे मुनियो को प्रतिलाभित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। वह कृतार्थ हुई।

कुछ समय पश्चात् सयोगवश देवकी की दृष्टि द्वार की ओर जाती है तो वह देखती है कि वे ही मुनिराज पुन पधार रहे है। देवकी मुनियो के नियमो को जानने वाली थी। वह सोचने लगी कि मुनिराज सुख-समाधि रहते एक घर से एक ही बार आहार ग्रहण करते है। दूसरे दिन भी उस घर मे नही जाते तो यह क्या बात है ? सही बात यह थी कि जो मुनि पहले आये थे, वे दुबारा नही आये किन्तु दूसरे दो मुनि आये थे। लेकिन इन मुनियो की आकृति भी पहले आये हुए मुनियो जैसी थी, इसलिये देवकी को ऐसा मालूम हो रहा था कि ये पहले वाले ही मुनि है। देवकी को विचार अवश्य उत्पन्न हुआ तदपि उसने अपनी दृष्टि मे दूसरी बार आये हुए मुनियो को सत्कारपूर्वक आहार प्रतिलाभित किया। दूसरा सघाडा भी आहार लेकर चला गया।

सयोगवश तीसरा सघाडा भी देवकी के यहा पहुच गया। देवकी का चतुर्थ अन्तरग नेत्र क्रियाशील हुआ। वह सोचने लगी कि 'ये मुनिराज बारबार मेरे घर मे क्यो प्रवेश कर रहे है ? यद्यपि

यहा किसी वस्तु की कमी नहीं, मेरी दानभावना मे भी कोई नहीं, कृष्ण महाराज का भडार और खजाना भरा हुआ है न विचार इस बात का होता है कि ये मुनिराज अपनी साधना यमो से विचलित हो रहे है। यदि साधु भी अपनी साधना से लेत होने लगे तो फिर किसका सहारा रहेगा ? साधु पानी के न निर्मल होते है। पानी के निर्मल कुण्ड मे यदि विष मिलने तो सारी दुनिया जहरीली हो जायेगी। साधुओ के जीवन मे त्रता रहनी ही चाहिये। दूसरा विचार उसे यह आया कि क्या का की जनता ने अपनी नैतिकता का परित्याग कर –सतो का स्वागत करना छोड दिया ? क्या द्वारिका की ा नैतिकता से गिर गई है जो साधु–सतो को आहरादि प्राप्त मे कठिनाई होती है जिसके कारण सतो को बार–बार मेरे आना पडा। क्या द्वारिका की जनता ने अपना अतिथि भाग व्रत लुप्त कर दिया है ? द्वारिका की जनता मे यदि ऐसा आ गया है तो इसका दायित्व राजा पर भी आता है क्योकि राजा तथा प्रजा' की उक्ति ठीक ही है। राजा मे त्रुटि है या का अनुशासन ठीक नहीं है या और कोई कारण है, कुछ मे नही आता।

इस प्रकार की अनेक कल्पनाए देवकी के मस्तिष्क में उठीं, ी उसने मुनिराज को आहार प्रतिलाभित किया। तत्पश्चात् । उन मुनिराज से ही अपना समाधान कर लेना उचित [illegible] द्वार तक पहुचाने गई और वन्दना [illegible] [illegible] न। आप तीसरी बार यहा [illegible] का नगरी मे अन्यत्र भिक्षा नहीं [illegible] ?

मुनिराज विचक्षण थे। वे समझ गये कि देवकी के इस भ्र
का कारण क्या है ? उन्होने स्पष्टीकरण करते हुए कहा – 'हम
छह सहोदर भाई भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षित हुए हैं
अभिग्रह लेकर दो–दो के समुदाय मे हम भिक्षा के लिये निकलते
है। द्वारिका बडी नगरी है। सभव है, सयोग ऐसा बना है कि दो
सघाडे यहा पहले आ गये हो और हम भी चले आये। हम छ
भाइयो की आकृति एक ही जैसी है अतएव तुम्हे इस प्रकार की
शका हो गई है। देवानुप्रिये ! जो सत पहले आये थे, वे हम नहीं
है, हम दूसरे है। हम छह भाइयो ने एक ही माता सुलसा की कुक्षि
से जन्म लिया है, हमारी आकृति तुल्य है। हमने तरुण वय मे
ऋद्धि वैभव का त्याग करके प्रभु–चरणो मे मुनि–जीवन अगीकार
किया है।'

मुनि–जीवन कौन अगीकार करता है ? कई भाई कह
करते है कि जिन्हे कमाना नही आता, वे साधु बन जाते है ! य
कितनी तुच्छता भरी बात है ! अरे ! निठल्ले तो बहुतेरे बैठे हैं,
सबके सब साधु क्यो नही बन जाते ? लोग निकम्मे हो जाते है
वृद्धावस्था मे पहुच जाते है तदपि नासिका के मैल की मक्खी की
तरह असयमी जीवन से चिपके रहते है ! जो पुण्यवान् आत्मा
होती है वे ही त्याग के मार्ग पर अग्रसर होती है। साधारण लो
की स्थिति तो ऐसी है कि 24 घटो के लिये भी वे मार्यादा मे न
रह पाते। पौषध करना या दया व्रत की आराधना करना भी उ
कठिन लगता है। अरे ! धन्ना शालिभद्र जैसे ऋद्धिशाली व्य
समय आने पर सब कुछ त्याग कर सयम–मार्ग पर चल पडे। इ
प्रकार उन्होने अपना कल्याण कर लिया। अस्तु।

मुनियो का स्पष्टीकरण सुन कर देवकी का मन प्रफुल्लित हुआ। वह सोचने लगी कि वह माता धन्य है जिसके ये छह अगजात हैं। वह माता वीरमाता है जिसने अपने कलेजे के टुकडो को, ऐसे–ऐसे छह रत्नो को आध्यात्मिक सेवा हेतु अर्पण किया। देवकी फूली नहीं समाई।

क्या देवकी महारानी की तरह आज की माताए चिन्तन करेगी ? सम्यग्दृष्टि आत्मा की तरह नियमो को पालने मे और पलवाने मे जागृत रहेगी ? पर्युषण के दिनो मे अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास किया जाय तो पर्व की आराधना सार्थक होगी।

देवकी का चिन्तन

देवकी के मन मे प्रसन्नता हो रही थी। सहसा उसकी विचारधारा अतीत की ओर मुडी और उसे स्मरण आया कि बचपन मे मुझे अतिमुक्तक अनगार ने फरमाया था कि 'भारत भूमि मे तेरे समान गौरवशालीनी माता कोई अन्य नही होगी। तू जिन पुत्रो को जन्म देगी वे अलौकिक, अनुपम और असाधारण होगे। तू सर्वश्रेष्ठ जननी के रूप मे विख्यात होगी।' मैने आज जो दृश्य देखा है, उससे मुनिराज के ये वचन मिथ्या प्रतीत हो रहे है। लेकिन दुनिया की कहावत है –

जो भाखे वर कामनी, जो भाखे अणगार।

शुद्ध जीवन वाली पतिव्रता स्त्री सहज सरल भाव से ...

वचन बोलती है, वह प्राय सही हुआ करते हैं। छल कपट से रहित, शुद्ध जीवन वाले अनगार के मुख से निकले हुए वचन असत्य नहीं होते। सतजन मन, वचन और कर्म से एकरूप होते है। उनके मन मे कुछ और, बाहर कुछ और ऐसा दुहरा जीवन उनका नहीं होता। सतजनो का जीवन सरल, अनुशासित और निर्दोष होता है। ऐसे ही सत प्रभु महावीर के शासन को समलकृत करते है। उनके जीवन की स्थिति सहज और सरल होती है। उनके मुख से निकले हुए वचन असत्य नही होते। निर्दोष, अबोध और भोले बालक के मुख से सहज और अकस्मात् निकले हुए वचन प्राय मिथ्या नहीं होते।'

'परन्तु मै देख रही हू कि उन मुनिराज के वचन सत्य नहीं लगते। मैंने छह पुत्रो को जन्म अवश्य दिया परन्तु वे मरे हुए थे। कृष्ण को जन्मते ही गोकुल भेज देना पडा। उसका लालन–पालन करने, लाड लडाने या बाल–सुलभ लीलाओ का आनन्द लेने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं अधन्य हूँ। धन्य तो है वह माता, जिसने इन नलकुबेर के समान छह सहोदर भाइयो को जन्म दिया है।'

इस प्रकार देवकी का चिन्तन चल रहा है। उसके मन मे अतिमुक्तक मुनि के वचनो के प्रति शका उत्पन्न हो गई। वह सशय–ग्रस्त हो गई। लेकिन वह विचक्षण थी। उसने निश्चय किया कि क्यो न इस सशय का समाधान प्रभु अरिष्टनेमि से कर लिया जाय। सशय उत्पन्न होना बुरा नही है, साधक को अनेक विषयो मे सशय हुआ करता है, परन्तु सशय का समाधान कर लेना

चाहिये। सशय मे घुलते रहना बुरा है। शास्त्रकारो ने कहा है कि सशय करने वाले व्यक्ति का विनाश होता है। गीता मे कहा है —

सशयात्मा विनश्यति।

सशय से आत्मा नष्ट होती है। जिज्ञासा को लेकर जो सशय हुआ करता है, वह आपत्तिजनक नहीं है। वह तो ज्ञान वृद्धि का कारण होता है। परन्तु वह सशय विनाश का कारण बनता है जो सदैव ही सशय बना रहता है और कभी समाधान की स्थिति मे नही आता। शका होने पर उचित स्रोत से और उचित व्यक्ति से समाधान प्राप्त कर लेना चाहिये। देवकी ने यही पद्धति अपनाई और वह अपने सशय के निवारणार्थ भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा मे पहुची।

देवकी के प्रश्न करने पर भगवान् अरिष्टनेमि ने उसका समाधान करते हुए फरमाया कि ये छह सहोदर भाई तेरे ही पुत्र है। यह सुनते ही देवकी के हृदय मे असीम उल्लास पैदा हुआ। उसका रोम–रोम विकसित हो गया। शरीर फूल गया। कचुकी के बन्ध टूट गये। स्तनो से दूध की धारा बहने लगी। शास्त्र मे ऐसा वर्णन किया गया है। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण बात नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित है। आप सब जानते है कि माता के स्तनो मे दूध कब आता है ? जब माता मे अपनी सन्तान के प्रति तीव्र वात्सल्य पैदा होता है, तब दूध आता है।

जब देवकी ने उन छह सहोदर बन्धुओ को अपनी सन्तान के रूप मे जाना तो उसके हृदय मे उनके प्रति [illegible]

वात्सल्य पैदा हुआ कि उसके स्तनो से दूध निकल पडा। माता व
सन्तान के प्रति वात्सल्य ही उसके स्तनो मे दूध पैदा करता है
देवकी अपने भाग्य की सराहना करने लगी। वह अपने को ध
मानने लगी कि उसकी कुक्षि से सात अद्वितीय लालो का ज
हुआ। उसके छह लाल महामुनि बन कर मोक्षमार्ग की आराध
कर रहे है और एक लाल कृष्ण द्वारकाधिपति के नाते जनता
प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहा है। वह अपने अहो भा
पर प्रसन्न है, साथ ही वह अपने कर्तव्य को स्थिर करने के प्र
भी सावधान है। इसके पश्चात् वह अपने जीवन को क्या दि
प्रदान करती है, यह आगे का विषय है।

जीवन तत्त्व

अन्तगड के माध्यम से जीवन का निर्माण करने वाले त
आपके सामने रखे है। ये आध्यात्मिक विटामिन (जीवन तत्त्व)
इनका पुन पुन सेवन करना चाहिये। सूर्य प्रतिदिन वही का
उगता है। हजारो नही, लाखो वर्षो से सूर्योदय की एक सी रि
चली आ रही है तो क्या सूर्योदय के प्रति आपकी रुचि
रहती ? अवश्य रहती है। रोज–रोज उगने वाला सूर्य प्रभात मे
स्फूर्ति प्रदान करता है। प्रतिदिन उगने पर भी सूर्यदर्शन के
रुचि बनी रहती है। आप प्रतिदिन दूध पीते है, दही और घी र
हे। दूध, दही और घी का स्वाद क्या प्रतिदिन नया–नया होत
या सदाकाल उनका एकसा स्वाद हुआ करता है ? एक सा र
होते हुए भी उन चीजो का पुन पुन सेवन किया जाता है क्य

वे चीजे शरीर को पुष्टि देती हैं। इसी तरह अन्तगड मे आये हुए जीवन–चरित प्राचीन होने पर भी जीवन का निर्माण करने वाले हैं। अतएव इन्हे नये सदर्भो मे नई दृष्टि के साथ समझने का तथा आचरण मे लाने का प्रयास करना चाहिए।

यदि आप अन्तरग दृष्टि को विकसित करते हुए अपने जीवन का निर्माण करेगे तो आप भी आत्मा की सर्वोच्च स्थिति पर पहुच सकेगे, जगत् शिरोमणि हो सकेगे। इस स्थिति पर पहुचने के लिये भौतिक दृष्टि से ऊपर उठना पडेगा और अन्तर्दृष्टि का उद्घाटन करना होगा। ऐसा करने पर आप मगलमय स्वरूप को प्राप्त कर सकेगे।

देशनोक
3–9–75

✻✻✻✻

कर्तव्य–बोध

काकन्दी नगरी भली हो श्री सुग्रीव नृपाल।
'रामा' तस पटरानी हो, तस सुत परम कृपाल।।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो।।
वदत पाप पुलाय
प्रभुता त्यागी राजनी हो लीधो सजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो पाम्या पद अविकार।।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो।।

यह सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना है वैसे तो परमात्मा सब प्रकार के नाम, जाति आदि विकल्पो से अतीत है, सब सिद्ध–परमात्माओ का स्वरूप एक–सा है। सब सच्चिदानन्दमय और ज्योति–स्वरूप है। सब अजर, अमर, अगम, अगोचर, अविनाशी, निरजन, निराकार, निर्विकल्प, निर्लेप, निरामय, निष्कलक और निष्काम है। वे सब अविनाशी है और सुख की राशि है। तदपि भूतकालीन नय की अपेक्षा से तथा पर्याय की विवक्षा से परमात्मा के विविध गुण और विविध नामो का कीर्तन किया जाता है। इसी दृष्टि से यहा परमात्मा को 'सुविधिनाथ' कहा गया है।

रूप मे रही हुई आत्मा पूर्व मे सुविधिनाथ तीर्थकर के रूप मे थी, अतएव उस भूतभाव को लेकर सिद्ध स्वरूप परमात्मा को सुविधि जिनेश्वर कहा गया है। उन सुविधिनाथ परमात्मा को वन्दन करने के लिए कवि ने प्रेरणा दी है। साथ ही यह विश्वास दिलाया है कि यदि उन परमात्मा को वन्दन किया जाय तो सब पाप नष्ट हो सकते है।

सुविधिनाथ क्यो वन्दनीय है ?

प्रश्न हो सकता है कि सुविधिनाथ हमारे लिए क्यो वन्दनीय है और उनको वन्दन करने से पापो का नाश किस प्रकार हो सकता है ? इसका उत्तर स्वय कवि ने इन पक्तियो मे दिया है–

प्रभुता त्यागी राज नी हो, लीधो सजम भार।
निज आतम अनुभव थकी, हो पाम्या पद अविकार।।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो।

सुविधिनाथ इसलिए वन्दनीय नही है कि वे एक विशाल राज्य के स्वामी थे अथवा अपार धन–वैभव उनके चरणो मे लौटता था। वे इसलिए वन्दनीय है कि उन्होने विलासपूर्ण जीवन को छोडकर सयम का मार्ग अपनाया था। सयम की साधना के द्वारा आत्मा के मौलिक स्वरूप का अनुभव किया। आत्मा का साक्षात्कार करके परिपूर्ण केवलज्ञान प्राप्त किया और उसके विमल आलोक मे जन–कल्याण के लिए सुविधि का निर्देश दिया, धर्मतीर्थ की स्थापना की और अन्तत अविकार और शाश्वत सिद्ध स्वरूप को प्राप्त हुए।

उन सुविधिनाथ भगवान् ने जगत् के जीवो को सुविधि बताई, कल्याण का मार्ग बताया, कर्तव्य का दिशाबोध दिया और ससार–सागर से पार होने का तौर–तरीका या विधि–विधान समझाया। अतएव वे 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार 'सुविधिनाथ' कहलाये।

सुविधिनाथ परमात्मा की बताई हुई सुविधि के अनुसार चलने वाला, उसे जीवन व्यवहार मे अपनाने वाला, उसके अनुसार प्रवृत्ति करने वाला व्यक्ति सब पाप–बन्धनो से मुक्त होकर अपने जीवन–लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। ससारवर्ती प्राणी विविध दुखो से अभिभूत हो रहा है, पाप के सतापो से सतप्त हो रहा है, दुष्कर्मों के भार से दबा जा रहा है, मोह के अन्धकार मे ठोकरे खा रहा है, लक्ष्य से भ्रष्ट होकर इधर–उधर भटक रहा है। इन सब दुर्दशाओ से छुटकारा पाने का उपाय, दु खो से मुक्त होने की युक्ति तथा सुख प्राप्त करने की सुन्दर विधि सुविधिनाथ परमात्मा ने बताई है। अत वे जगज्जीवो के लिए वन्दनीय है, पूजनीय है, आराध्य है, ससेव्य है। यदि जगत् को दु खो से उबरना है, सुख पाना है तो सुविधिनाथ प्रभु की बताई हुई सुविधि–सुन्दर विधि को अपनाना होगा। इस सुविधि से ही जगत् का निस्तार सभव है। यह सुविधि ही सुख की सुविधि है।

सुविधि की विधि

सुविधि की विधि से तात्पर्य है भगवान् सुविधिनाथ के द्वारा प्ररूपित मार्ग। अब प्रश्न यह है कि वह कौनसी विधि है ? कौन सा मार्ग है ? जो उन सुविधिनाथ परमात्मा ने बताया है। इसका

सुहे पवित्ती, असुहाओ विणिवित्ती।

इस एक सूत्र मे –गागर मे सागर की तरह–उस विकट प्रश्न का उत्तर दे दिया गया है। शुभ मे प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करना ही सुख की विधि है, सुख का मार्ग है।

सिक्के के दो पहलू ·

प्रवृत्ति और निवृत्ति, विधि और निषेध, एक ही सिक्के के दो पहलू है या एक ही रथ के दो चक्र है। सिक्के के दोनो ओर कुछ अकन किया हुआ होता है। दोनो ओर का अकन सही और ठीक–ठीक स्थिति मे होने पर ही सिक्का सही माना जाता है। उसकी दोनो बाजुए यथावत् होने पर ही वह अपना सही मूल्य पाता है। यदि सिक्का एक तरफ से घिसा–पिटा हो तो वह अपना सही मूल्य नहीं पा सकता है। एक चक्र के द्वारा रथ की गति सभव नही है। रथ के दोनो पहिये जब साथ–साथ घूमते है तब रथ की गति होती है और उसके द्वारा मजिल पर पहुचा जा सकता है, इसी तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही धर्मरूपी सिक्के के दो पहलू है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। ये दोनो एक–दूसरे के पूरक होते है, विरोधी नही। अशुभ से हटना निवृत्ति है और शुभ मे लगना प्रवृत्ति है। विधि, प्रवृत्तिपरक है और निषेध निवृत्तिपरक। जब अशुभ से निवृत्ति की जाती है तो शुभ मे प्रवृत्ति अवश्य होती है, शुभ मे प्रवृत्ति होने पर अशुभ से निवृत्ति सहज हो जाती है। ये जीवन मे साथ–साथ चलते है।

'सु' की सार्थकता

वैसे तो क्रिया मात्र मे–चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो– विधि निषेध या प्रवृत्ति–निवृत्ति पाई जाती है। एक चोर अपने दूसरे चोर साथी के साथ परामर्श कर रहा है कि अमुक स्थान पर चोरी करना। दूसरा साथी कह रहा है कि नहीं, अमुक स्थान पर चोरी न करके अन्यत्र कहीं चोरी करना। इसप्रकार एक स्थान पर चोरी करने का निषेध किया जा रहा है और दूसरे स्थान पर चोरी करने का विधान किया जा रहा है। दोनो के मुह से दो बाते निकल रही है। यह स्वाभाविक है कि एक स्थान पर चोरी करेगा तो दूसरे को छोडेगा। दूसरे स्थान से हट कर तीसरे स्थान पर जायेगा तो दूसरे को छोडना पडेगा। एक मे प्रवृती होगी, एक से निवृत्ति होगी। इस प्रकार बुरे कार्य मे भी प्रवृत्ति–निवृत्ति का प्रसग प्राप्त होता है, विधि–निषेध का अवसर उपस्थित होता है। इस दोष की निवृत्ति के लिए 'सु' उपसर्ग का प्रयोग किया गया है। सामान्य विधि–निषेध या सामान्य प्रवृत्ति–निवृत्ति यहा अपेक्षित नही है अपितु सुविधि ओर सु–निषेध, सम्यक् प्रवृत्ति और सम्यक् निवृत्ति ही धर्म का मार्ग हो सकती है।

'सु' का अर्थ होता है प्रशस्त, श्रेष्ठ, सुन्दर। सुन्दर विधि के साथ यदि प्रवृत्ति की जाती है, शुभ मे यदि प्रवृत्ति की जाती है तो जीवन मे प्रगति आती है, जीवन विकसित होता है और आत्मा उर्ध्वगामी बनता है। प्रशस्तता या सुन्दरता के अभाव मे की जाने

रुलाती है और दु खमय स्थिति उपस्थित करती है। इसलिए सुविधिनाथ प्रभु ने अपने सार्थक नाम के अनुसार जगत् के सामने कल्याण, अभ्युदय और सुख की सुन्दर विधि निरूपित की है। उन्होने कहा है कि शुभ मे प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करो। यही एक मात्र कल्याण का रास्ता है, सुख का स्रोत है और मोक्ष का मार्ग है। यदि मानव अपने जीवन मे यह सुविधि अपनाता है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इस सुविधि को लागू करता है तो उसका जीवन मगलमय बन जाता है। इस सुविधि को अपनाकर मानव आनन्द की अक्षय निधि को हस्तगत कर लेता है।

विधि का दूसरा अर्थ होता है–कर्तव्य। सुविधि अर्थात् सत्कर्तव्य। कर्तव्य-शब्द बंहुत व्यापक और विशाल अर्थ को लिए हुए है। कर्तव्य के क्षेत्र मे समस्त करणीय कार्यों का समावेश हो जाता है। जो व्यक्ति जिस स्थान पर है, जिस पद पर है, उसके अनुरूप उसका कर्तव्य निर्धारित होता है।

एक व्यक्ति यदि वह साधु–जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसका जीवन साधु–जीवन की मर्यादा के अनुरूप होगा। यदि वह उस मर्यादा का अतिक्रमण करता है तो वह उसका अकर्तव्य कहलाएगा। उदाहरण के बतौर समझ ले कि साधु आरम्भ–समारम्भ आर हिसा का सर्वथा त्यागी होता है। वह कोई ऐसी क्रिया नहीं कर सकता, जिसमे लघुतम प्राणियो की भी हिसा होती हो। वह गमनागमन की क्रिया ईर्या समिति का ध्यान रखते हुए करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो अकर्तव्य का सेवन करता है।

साधनामय जीवन मे भाषा का बडा महत्त्व होता है। अवएव भाषा का प्रयोग करते हुए भाषा–समिति का ध्यान रखते है। वह इस मर्यादा का अतिक्रमण करता है तो वह अकर्तव्य का रण करता है।

बिना दिये हुए साधु किसी वस्तु को नही लेता। यह उसकी ार–विधि है। लेकिन यदि वह यहा लगे कलेन्डर (तिथिपत्र) भी बिना गृहस्थ की आज्ञा लिये हाथ लगाता है, देखता है तो उसके लिए अकर्तव्य है।

विकारी भावना से यदि वह स्त्रियो से बातचीत करता है वा एकात मे बिना पुरुष की साक्षी के स्त्री से बोलता है तो वह के लिए अकर्तव्य है।

यदि कोई साधु रुपयो–पैसो के विषय मे या चदे–चिट्ठे मे ा लेता है, इतने रुपये इकट्ठे होने चाहिए, इतना चदा देना हेए, इतना अमुक सेठ सा दे, इतना अमुक व्यक्ति दे, इस प्रकार प्रवृत्ति यदि साधु करता है तो वह अकर्तव्य की ओर जा रहा कर्तव्य–मार्ग से वह हट रहा है। साधु जीवन की अपेक्षा से जो र्तव्य हैं, वे किन्ही प्रसगो मे गृहस्थ के लिए कर्तव्य हो जाते हैं। स्थ की स्थिति मे रहा हुआ व्यक्ति छोटे प्राणियो की हिसा से रभिकी हिसा से बच नहीं सकता। वह सकल्पी हिसा का त्याग ता है किन्तु जीवन निर्वाह के लिए, परिवार–समाज तथा राष्ट्र प्रति अपने कर्तव्य को निभाने के लिये वह आरभिकी हिसा से नही सकता।

मान लीजिए किसी गृहस्थ के घर उसके माता–पिता

बीमार है। पर्युषण के दिन है जैसे कि अभी चल रहे हैं। सवत्सरी का दिन आ गया। इस दिन जैन समाज मे परिपाटी है कि छोटे–छोटे बच्चे भी उपवास करते है, पौषध करते है, आरम्भ–समारम्भ से बचते है, चौके–चूल्हे की छुट्टी रहती है। यदि वह गृहस्थ अपने बीमार, अशक्त और वृद्ध माता–पिता की सेवा–शुश्रूषा के लिए आरम्भ समारम्भ करता है, भोजन बनाता है–खिलाता है तो वह अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। यदि वह ऐसा न करते हुए, उनकी समुचित देखभाल की अन्य व्यवस्था न करके माता–पिता को उनके भाग्य भरोसे छोड कर अष्ट प्रहर का पौषध करने स्थानक मे चला जाता है तो वह गृहस्थ अपने कर्तव्य–मार्ग से पतित होता है। जो व्यक्ति उसके आश्रित है उनके खानपान की व्यवस्था किये बिना यदि वह पौषध कर लेता है तो उसको 'भत्तपाण विच्छेद' (आहार पानी का विच्छेद) नामक अतिचार लगता है। यदि वह अपनी जवाबदारी किसी सुयोग्य व्यक्ति को सभाल कर पौषध करता है तो वह कर्तव्य की श्रेणी मे है। तब अकर्तव्य की स्थिति नही बनती। इस तरह साधु जीवन और गृहस्थ–जीवन के कर्तव्य अधिकारी भेद के कारण पृथक्–पृथक् होते है। जो साधु–जीवन के कर्तव्य है, वे सब गृहस्थ के भी कर्तव्य हो, ऐसा एकान्त नही हो सकता। उनमे अन्तर आ जाता है। सम्यग्दृष्टि, गृहस्थ अवस्था मे रहता हुआ समताभाव से परिवार के सदस्यो के प्रति अपने दायित्व को निभाता हुआ कर्तव्य का आराधक होता है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने अन्तरग नेत्रो को उद्घाटित रखता हे, यह वात कल के व्याख्यान मे बताई गई थी। आपको वह वात याद रही हो, या न रही हो, यह तो आप जाने क्योकि प्राय कई

लोग एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने वाले होते है। आप सम्यग्दृष्टि है और आपके अन्तरग नेत्र खुले है, यह बात तो कसौटी करने पर ही ज्ञात हो सकती है।

देवकी का कर्तव्य बोध

महारानी देवकी का प्रसग चल रहा है। महारानी देवकी शयनकक्ष मे पलग पर बैठी हुई अपने कर्तव्य का अनुसधान कर रही है। वह सोच रही थी कि मैने गृहस्थ अवस्था की दृष्टि से कठोर व्रत का निर्वाह किया, पतिव्रत धर्म मे दृढ रह कर कर्तव्य को ठीक तरह से निभाया। पतिदेव भी मुझे ऐसे मिले, जिन्होने अपने वचनो की रक्षा के लिए प्राणप्रिय पुत्रो को कस को सोप दिया। मेरे पति बडे सत्यनिष्ठ है। उन्होने अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। लेकिन जब मै माता के कर्तव्य और दायित्व का विचार करती हूँ तो मुझे दु ख होता है कि मै उस दायित्व और कर्तव्य का निभाने मे असमर्थ रही।

माता का दायित्व

सन्तान के प्रति पिता की अपेक्षा माता का दायित्व विशेष होता है। माता केवल जन्म देने वाली मशीन नहीं है अपितु वह सन्तान के जीवन का निर्माण ओर सस्कार करने वाली कुशल शिक्षिका है। वह सन्तान के जीवन की निर्मात्री ओर सस्कार दात्री होती है। सन्तान रूपी कच्ची मिट्टी को सुन्दर कलश का रूप द देना उसकी ही कला है। बालक गर्भ मे आते ही माता की जवाबदारी शुभ हो जाती है। विवेकवती गर्भवती माताए ३५

विचारो और अपने रहन–सहन को इस प्रकार का मोड देती है कि जिससे गर्भस्थ बालक पर सुन्दर सस्कार पड़ते रहे। उसकी कूख से जन्म लेने वाला बालक तेजस्वी, बलिष्ठ, निर्भीक, नीति–सम्पन्न और राष्ट्रीय चरित्र की गरिमा को लिए हुए हो, ऐसी भावना प्रत्येक माता की रहनी चाहिए। इस भावना को साकार करने हेतु माता को कई मर्यादाए अपनानी होती है। खान–पान मे तथा रहन–सहन मे सयमशील होना पडता है। ऐसी कई मर्यादाओ का शास्त्रो मे उल्लेख मिलता है।

गर्भावस्था मे माता की दुहरी जवाबदारी होती है। यदि वह उस अवस्था मे विकारी भावना लेकर चलती है तो इससे उसका तो अहित होता ही है, गर्भस्थ बालक पर भी प्रभाव पडता है। गर्भवती स्त्री यदि झूठ बोलती है, गुस्सा करती है, झगडा करती है तो उसकी सन्तान मे भी असत्य, क्रोध और क्लेश–ककाश की बहुलता होगी। माता की प्रक्रियाओ का असर गर्भस्थ सन्तान पर पडता है। अतएव माताओ को इस विषय मे पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए।

देवकी महारानी सोच रही है कि 'मैने इन सब बातो का ध्यान रखा, इन सब अनमोल लालो को सवा नौ मास तक गर्भ मे सरक्षण दिया परन्तु इससे आगे के कर्तव्यो को पूर्ण करने मे मै लाचारीवश असमर्थ रही। यह मेरे अशुभ कर्मों की कैसी विडम्बना है कि मै सात–सात लालो की जननी होते हुई भी उनके प्रति मातृत्व के कर्तव्यो को निभा न सकी। आज जो त्रिखड का अधिपति है, भरत क्षेत्र मे जिसकी बराबरी का कोई नही, उस

कृष्ण को जन्म मैने दिया लेकिन उसके लालन–पालन और सस्कार प्रदान करने के मेरे दायित्त्व को मै निमाने मे असमर्थ रही।'

देवकी की विचारधारा आगे चली, 'मैने उन छह सहोदर बन्धुओ को जन्म दिया। यह मेरा बडा सद्भाग्य है कि ऐसे नलकुबेर के समान सुन्दर छह लाल मेरी कूख से जन्मे। परन्तु सचमुच [illegible] यह मेरा दुर्भाग्य नहीं कि मैं इन छह पुत्रो का लालन–पालन न [illegible] पाई, इनमे अपने सस्कार न डाल पाई। क्या ही अच्छा [illegible] तो इन्हे वात्सल्य भाव से, माता की ममता से अपने [illegible] कराती ओर दूध पिलाती हुई उनमे सुन्दर सस्कार [illegible] अच्छा होता यदि मैं इन्हे सुसस्कारित, सुशि[illegible] स्वय अपने हाथो से भगवान् अरिष्टनेमि के [illegible] की सेवा के लिए समर्पित करती।

यो चितन करती हुई [illegible] । मातृत्व के कर्तव्यो को [illegible] शोक हो आया। उसके [illegible] वे ने इस प्रकार प्रकट [illegible] है–

महारानी देवकी के कर्तव्य-भावो की अभिव्यक्ति को साधारण जन इन कडियो द्वारा समझ सकते है, इस दृष्टि से इनका यहा उच्चारण किया गया है। देवकी सोचने लगी कि मैंने सात पुत्रो को जन्म दिया परन्तु विधि की कैसी विडम्बना है कि एक को भी गोद मे खेला न पाई, स्तनपान न करा सकी और रूठते हुए को मनाने का सौभाग्य न पा सकी। यहा देवकी की यह भावना कर्तव्य-निष्ठा को लेकर है, माता के दायित्व की दृष्टि से है। माता का दायित्व गुरुतर है। ममता और वात्सल्य की धारा से सतान को सिञ्चित करती हुई उसमे सस्कारो का बीजारोपण करती है। वे ही बीज अकुरित और पल्लवित होकर सतान के जीवन का निर्माण करते है।

दु ख का विषय है कि आजकल माताए सन्तानो को जन्म तो देती है किन्तु उन्हे सस्कारित करने की ओर ध्यान नही देती। वैसे तो मादा पशु पक्षी भी अपने बच्चो को जन्म देती ही है। अपनी क्षमता के अनुसार अपनी भाषा मे सकेतो द्धारा वे भी सन्तति को शिक्षित करते है। आप समझ पाए या न समझ पाए, गाय की आवाज को बछडा पहचान लेता है और बछडे की आवाज को गाय पहचानती है। पक्षी अपने घोसलो मे किस प्रकार शिशुओ को सुरक्षित रखते है, पालते है, चुग्गा चुगाते है और किस प्रकार उन्हे स्वावलबी बना कर गगन मे स्वतत्र रूप से उड सकने की क्षमता प्रदान करते हे। वे अपनी क्षमता के अनुपात से सन्तान को योग्य वनाने का प्रयत्न करते है। मानव पर्याय मे रही हुई माताए को अपने ज्ञान के अनुरूप सन्तान को सस्कारित करने का प्रय

करती है ? खाने–पीने के साधन भले ही जुटा देती हैं, प्रात कालीन नाश्ता करा देती हे, सुन्दर वस्त्र पहना देती हैं, इसमे अपने कर्तव्य की समाप्ति मान लेती हैं। कुछ माताए बालको की शरारतो से तंग आकर उन्हे जल्दी स्कूल मे प्रविष्ट करा देती है ताकि वे बच्चो की शरारतो से छुट्टी पा जाए। विद्यालयो मे प्रविष्ट करा देने के पश्चात् माता–पिता यह मान लेते हे कि अब उनकी देख–रेख की जवावदारी पूरी हो गई। अब सारी जवाबदारी शिक्षक की [illegible] ली जाती हे। परन्तु ऐसा मान लेना स्वय को धोखा देना है [illegible] स्कूल मे क्या पढ रहा है, उसको कैसा वातावरण [illegible] किसकी सगति मे रह रहा हे, उसका चरित्र बन रहा है [illegible] रहा है वह व्यसनो का शिकार तो नहीं हो रहा है [illegible] के प्रति माता–पिता प्राय लापरवाह देखे [illegible] अपने धधे के आगे यह सब देखने की [illegible] अपने घर के धधो और पराये घर [illegible] तो सन्तान को सुसस्कार कहा [illegible]

रूढ और दृढ बन गये। अब उनका परिमार्जन होना कठिन हो जाता है। अतएव माता–पिता को सतान के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह ठीक रीति से करना चाहिए क्योकि बालक कोमल वय मे ही सस्कारो को ग्रहण करता है। मिट्टी जब तक मुलायम और गीली है तभी तक कुम्भकार उससे इच्छित पात्र बना सकता है। बचपन के सस्कार ही बालक के जीवन का निर्माण करते है। लोरिया सुनाकर माताए अपनी सतान को वीर, तेजस्वी और कर्तव्य–निष्ठ बना सकती हैं। मारवाडी भाषा मे एक प्रसिद्ध लोरी बडी मर्मस्पर्शी है–

> बालो पाखा बाहर आयो, माता बैण सुणावे यू।
> म्हारी कूख सिलाइजे बाला मै थने सखरी घूटी दू।
> गोदी सूतो बालो चूखे माता बैण सुणावै यू।
> धोळा दूध मे कायरता को काळो दाग न लाइजे तू।

वीर माता अपने पुत्र को दूध पिलाती हुई कहती है–पुत्र ! म तुझे अपने स्तनो का स्वच्छ, सुन्दर, निर्मल और मधु दूध पिला रही हूँ। तू जेसा सफेद ओर स्वच्छ दूध पी रहा है उसके अनुरूप ही अपने जीवन को स्वच्छ ओर साफ सुथरा रखना। दुनिया के रगमच पर तुम्हारी कीर्ति इस श्वेत दूध के समान तथा चन्द्रमा की चाँदनी की तरह फेले। तुम्हारे जीवन मे दिव्यता प्रकट [illegible]। याद रखना, तुम ऐसा काई कार्य मत करना जिससे मेरे [illegible] [illegible] काला दाग लगने का प्रसग आवे। तू अपने जीवन का बद[illegible] [illegible] मेरे दूध का बेदाग रखना। तू अपने जीवन –व्यवहार [illegible] [illegible] तेजस्वी बन कर मेरी कूख का गौरव प्रदान कर[illegible]

तू ऐसी कायरता या अनैतिकता का आश्रय मत लेना जिससे मेरी कूख लज्जित हो, मुझे नीचा देखना पडे। हे वीर बालक ! तू अपने निर्मल जीवन से निर्मल यशोराशि अर्जित करना और मेरे निर्मल दूध को निर्मल बनाये रखना। मुझे वीर–जननी का गौरव प्रदान करना।'

इस प्रकार की उदात्त शिक्षाए देने वाली माताए जगत् का कायाकल्प कर सकती हैं।

मदालसा की शिक्षाए

ऐसा कहा जाता है ओर कई व्यक्ति कहते भी है कि माता केवल मोहवश सतान का पालन–पोषण करती है। परन्तु यह कथनं भ्रमपूर्ण है। विवेकवती माताए मोह के वशीभूत होकर नहीं, अपितु कर्तव्य बुद्धि से शिशु का सगोपन करती है। ऐसा करते हुए वह अनेक स्थितियो मे वह मोह का परित्याग करती है। मोह को छोडे बिना माताए अपनी सन्तति को सुसस्कारित नहीं बना सकतीं। मोह मूढ माताए सन्तान को सुशिक्षित और सुसस्कारित नहीं कर सकती। जब वे मोह से ऊपर उठती है और कर्तव्य भावना से अनुप्राणित होती है तभी सस्कार और शिक्षाए दी जा सकती हैं। पुराणो मे मदालसा का वर्णन आता है।

मदालसा अपनी कूख मे आई सतति को मोह–निवृत्ति की शिक्षा देती थी। मोह निवृत्ति की शिक्षा देने वाली माताएं स्वय मोहग्रस्त कैसे हो सकती है ? वह कर्तव्य भावना से–शुभ भावना से प्रेरित होकर सन्तति को सस्कार प्रदान करती थी। उसने [illegible]

न होकर आध्यात्मिक साधना मे लगे। कुटुम्ब की आसक्ति और सासारिक मोह का परित्याग कर वे परमात्मा की भक्ति मे लग गये।

महारानी मदालसा की इस प्रवृत्ति का जो परिणाम सामने आया, उससे महाराज विह्वल हो गये और कहने लगे कि 'महारानी, तुम यह क्या कर रही हो ? अपनी सन्तानो को साधु बना रही हो, सब साधु बन जाएगे तो राज्य के उत्तरदायित्व को कौन सभालेगा ? मै क्या अन्तिम दम तक ससार के प्रपचो मे ही उलझा रहूँगा ? मै आत्मकल्याण की साधना कब करूगा ?

महारानी मदालसा बोली,'प्राणनाथ ! आप चिन्ता न करिये। बच्चो को घडना मेरे हाथ का खेल है। कुम्भकार अपनी इच्छानुसार पात्र बना लेता है। मै अपनी भावना के अनुसार सतान को घड सकती हूँ। मुझ मे इतना आत्मविश्वास है। इस बार मै अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा दूगी, जिससे वह आपको निवृत्ति दे सकेगा और आप आत्मकल्याण के मार्ग पर चल सकेगे। वह राज्य की धुरा को वहन करेगा और अत समय मे वह भी अपनी सन्तान को राज्य सौंप कर आत्मकल्याण हेतु निकल पडेगा। महारानी ने अपने एक पुत्र को वैसे ही सस्कार दिये।

मदालसा महारानी मोहभाव के ऊपर उठी हुई थी, अत वह अपनी सतान को कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर सुन्दर सस्कार दिया करती थी। वह दूध पान कराते समय, झूला झुलाते समय तथा अन्य रीति स शिशुओ का सगोपन करते हुए कैसे सस्कार देती ह इसका चित्रण इस श्लोक मे किया गया है–

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोसि।

'हे पुत्र ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, निराकार है और ससार के बन्धनो से मुक्त है। मोह की निद्रा का परित्याग कर। जागृत होकर जीवन को समुज्ज्वल बना।'

महारानी मदालसा इस प्रकार के सस्कार अपनी सन्तान मे उडेला करती थी। क्या कोई मोह–ग्रस्त माता ऐसा कर सकती है ? मोह से ऊपर उठी हुई माताए ही कर्तव्य भावना से अपनी सतति को सुसस्कारित बनाती है।

महारानी देवकी का भी इस तरह का चिन्तन चल रहा है। वह सोच रही थी कि मैने अपनी सन्तानो को इस प्रकार के सस्कार नही दिये। यदि मै भी अपने पुत्रो को मदालसा की तरह सस्कारित करती और उन्हे भगवान् नेमिनाथ के चरणो मे समर्पित करती तो कितनी पुण्यशालिनी होती। जिनेन्द्र देव के शासन की सेवा के लिए यदि मै अपने हृदय के टुकडे इन छह अद्भुत रत्नो को अपने हाथो से अर्पण करती तो मेरा जीवन कितना धन्य हो जाता।

क्या यह झूरना आर्तध्यान है ?

कोई कह सकता है कि देवकी महारानी का यह झूरना आर्तध्यान की कोटि मे आता है। परन्तु यह कथन यथार्थ नहीं है। जो झूरना मोह को बढाने वाला होता है, मोह से जन्य होता है या मोह मे परिणत होता है वह आर्तध्यान की कोटि मे है। कर्तव्य

मे है। कर्तव्य दृष्टि को लेकर किया गया शोक सताप आर्तध्यान की श्रेणी मे नही आता। धर्म,गुरु या तीर्थ के प्रति जो राग का प्रसग होता है, वह प्रशस्त राग कहा जाता है। इसकी पुष्टि मे यदि आप शास्त्रीय प्रमाण चाहते है तो भगवती सूत्र मे वर्णित सिह अनगार का वृत्तान्त देखे।

जब प्रभु महावीर के शरीर मे अतिसार (खून की दस्ते लगना) रोग उत्पन्न हो गया, तब मुनिगण चिन्तित हो उठे। सिह अनगार तो इतने विह्वल हो उठे कि वे रुदन करने लगे। प्रभु महावीर ने उन्हे आश्वस्त करते हुए कहा कि 'सिह ! तुम चिन्ता न करो। मेरा अभी कुछ बिगडने वाला नहीं है। तुम चाहो तो इस रोग के निवारण हेतु औषधि, ला सकते हो। उनको औषधि लाने भेज दिया। सिह अनगार का यह रुदन आर्तध्यान मे नहीं है। यह प्रशस्त स्थिति है। देवकी महारानी का यह झूरना उत्तम जीवन की भावना–कर्तव्य दृष्टि को लेकर था, अत उसको प्रशस्त समझना चाहिए।

कर्तव्य-निष्ठा

महारानी देवकी कर्तव्यनिष्ठ थी। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि उसने अपने पति के वचनो की रक्षा के लिए अपने पुत्रों को कस को सौंप दिया। महारानी देवकी चाहती तो वह कह सकती थी कि 'वचन महाराज ने दिया है, मैंने कोई वचन नहीं दिया है। मैं अपने पुत्रो को क्यो कर सौंपू ? लेकिन महारानी देवकी ने ऐसा कोई विचार नहीं किया। पति ने जो कह दिया, वह उसे मान्य हुआ। उसने अपने पति की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए अपने

हृदय के टुकडा को कस को सौप दिये। यह कर्तव्य भावना है। मोह पर विजय प्राप्त किये बिना ऐसी कर्तव्य–निष्ठा नही आ सकती।

कृष्ण वासुदेव का विनय

कर्तव्यनिष्ठ महारानी देवकी का प्रभाव उनके अगजात कृष्ण वासुदव पर पडना स्वभाविक हे। कृष्ण त्रिखड के अधिपति थे। कर्तव्यपरायणता मे वे बहुत आगे बढे हुए थे। तीन खड के नाथ हाते हुए भी वे कर्तव्यो के प्रति बहुत जागरूक थे। वे प्रतिदिन अपनी माताआ का नमन करने आया करते थे। कितना विनय भाव था कृष्ण वासुदेव मे । क्या आप लोग भी अपने माता–पिता के चरणो मे प्रतिदिन नमन करत है ?

आजकल तो थोडा बहुत अक्षर ज्ञान हो जाने पर अथवा बीए एमए की डिग्री प्राप्त कर लोग अभिमान से फूले नही समाते। व न जाने अपने आपको क्या समझने लगते हे ? माता–पिता को नमने करन मे उन्हे लज्जा का अनुभव होता हे। मै पूछना चाहता हू कि त्रिखडाधिपति बडे थे या ये उपाधिधारी ? यह सोचने की बात है। उपाधियो के साथ जब पद की प्राप्ति हो जाती है तो कहना ही क्या ? वकील डॉक्टर या मिनिस्टर बन जाने पर तो आकाश मे उडने लगते है। उनके पेर जमीन पर नही टिकते। वे भला माता–पिता का क्यो विनय करे। यह दुष्परिणाम हे असस्कारो का। यदि माताओ ने प्रारम्भ से ही सुसस्कार दिये हो तो यह स्थिति नही आ सकती।

मे है। कर्तव्य दृष्टि को लेकर किया गया शोक सताप आर्तध्यान की श्रेणी मे नही आता। धर्म,गुरु या तीर्थ के प्रति जो राग का प्रसग होता है, वह प्रशस्त राग कहा जाता है। इसकी पुष्टि मे यदि आप शास्त्रीय प्रमाण चाहते है तो भगवती सूत्र मे वर्णित सिह अनगार का वृत्तान्त देखे।

जब प्रभु महावीर के शरीर मे अतिसार (खून की दस्ते लगने) रोग उत्पन्न हो गया, तब मुनिगण चिन्तित हो उठे। सिह अनगार तो इतने विह्वल हो उठे कि वे रुदन करने लगे। प्रभु महावीर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि 'सिह ! तुम चिन्ता न करो। मेरा अभी कुछ बिगडने वाला नही है। तुम चाहो तो इस रोग के निवारण हेतु औषधि, ला सकते हो। उनको औषधि लाने भेज दिया। सिह अनगार का यह रुदन आर्तध्यान मे नहीं है। यह प्रशस्त स्थिति है। देवकी महारानी का यह झूरना उत्तम जीवन की भावना–कर्तव्य दृष्टि को लेकर था, अत उसको प्रशस्त समझना चाहिए।

कर्तव्य-निष्ठा

महारानी देवकी कर्तव्यनिष्ठ थी। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि उसने अपने पति के वचनो की रक्षा के लिए अपने पुत्रों को कस को सौंप दिया। महारानी देवकी चाहती तो वह कह सकती थी कि 'वचन महाराज ने दिया है, मैने कोई वचन नहीं दिया है। मैं अपने पुत्रो को क्यो कर सौपू ? लेकिन महारानी देवकी ने ऐसा कोई विचार नहीं किया। पति ने जो कह दिया, वह उसे मान्य हुआ। उसने अपने पति की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए अपने

हृदय के टुकडो को कस को सौप दिये। यह कर्तव्य भावना है। मोह पर विजय प्राप्त किये बिना ऐसी कर्तव्य–निष्ठा नही आ सकती।

कृष्ण वासुदेव का विनय

कर्तव्यनिष्ठ महारानी देवकी का प्रभाव उनके अगजात कृष्ण वासुदेव पर पडना स्वभाविक है। कृष्ण त्रिखड के अधिपति थे। कर्तव्यपरायणता मे वे बहुत आगे बढे हुए थे। तीन खड के नाथ होते हुए भी वे कर्तव्यो के प्रति वहुत जागरूक थे। वे प्रतिदिन अपनी माताओ को नमन करने आया करते थे। कितना विनय भाव था कृष्ण वासुदेव मे । क्या आप लोग भी अपने माता–पिता के चरणो मे प्रतिदिन नमन करते है ?

आजकल तो थोडा बहुत अक्षर ज्ञान हो जाने पर अथवा बी ए, एम ए की डिग्री प्राप्त कर लोग अभिमान से फूले नहीं समाते। वे न जाने अपने आपको क्या समझने लगते हैं ? माता–पिता को नमने करने मे उन्हे लज्जा का अनुभव होता हे। मै पूछना चाहता हूँ कि त्रिखडाधिपति बडे थे या ये उपाधिधारी ? यह सोचने की बात है। उपाधियो के साथ जब पद की प्राप्ति हो जाती है तो कहना ही क्या ? वकील, डॉक्टर या मिनिस्टर बन जाने पर तो आकाश मे उडने लगते है। उनके पैर जमीन पर नही टिकते। वे भला माता–पिता का क्यो विनय करे। यह दुष्परिणाम है असस्कारो का। यदि माताओ ने प्रारम्भ से ही सुसस्कार दिये हो तो यह स्थिति नहीं आ सकती।

कृष्ण वासुदेव आज नमन के लिए माता देवकी के पास पहुचे। उस समय देवकी अपने कर्तव्य के विषय मे गहन चिन्तन कर रही थी। वह उदास मुद्रा मे बैठी थी। अन्यथा जब कृष्ण वासुदेव वन्दन के लिए आते, तब माता उनको देख कर बडी प्रफुल्लित होती थी और उन्हे आशीर्वाद देती थी। लेकिन आज कृष्ण ने देखा कि माता उदास बैठी है। मेरे आगमन की बात भी उन्होने न जानी। नजदीक आकर कृष्ण ने माता के चरणो मे मस्तक झुकाया। बन्धुओ ! क्या आप भी इस प्रकार विनयपूर्वक गुरुजनो के सन्मुख मस्तक नमाते है। क्या सतो को भी विधिपूर्वक उठ–बैठ कर वदना करते है या खडे–खडे ही 'मत्थेण वन्दना' कर लेते है ? शरीर को कष्ट कौन दे ? सतो को आपकी वन्दना की कामना नही है लेकिन यह वन्दना की विधि नही है। यह अविनय और अविधि है। मुह के आगे रुमाल या दुपट्टा लगा कर उठ–बैठ कर वन्दना करने और चरण छूने से सतो के प्रति विनय प्रकट होता है और आपका अभिमान गलता है। माता–पिता आदि गुरुजनो को मस्तक नमा कर वन्दन करना चाहिए।

कृष्ण वासुदेव ने अपना मस्तक माता देवकी के चरणो मे झुकाया। प्रगाढ स्पर्श से माता का ध्यान आकर्षित हुआ। माता बोली, 'कन्हैया, आ गया रे !'

कृष्ण बोले हा, माताजी ! मै आ गया। परन्तु आज आप उदास क्यो है ? क्या बात है ? आपका पुत्र त्रिखडाधिपति कहलाता है, सारे राज्य की जनता की सुधि लेने वाला है, प्रत्येक व्यक्ति के आसू पोछने वाला है, उसकी माता दुखी और उदास हो, यह मै नहीं देख सकता। मुझ से या परिवार के किसी सदस्य से

या अन्य किसी व्यक्ति से कोई त्रुटि हुई हो तो उसका निवारण करने को तैयार हूँ। आप बताइये, आप उदास क्यो है ? माता बोली, 'कृष्ण ! तू बडा विनयी और गुणी है। किसी से कोई त्रुटि नही हुई है, न किसी साधन सामग्री की ही कमी है। तदपि विधि की विडम्बना है कि तेरी माता बडी दु खी है।

कृष्ण–मेरी माता दु खी है तो दुनिया मे सुखी कौन होगा ?

माता–लाल ! मेरा दु ख कुछ और ही प्रकार का है ! मुझे सारी सुख–सुविधा की सामग्री प्राप्त है, सारा परिवार विनयपूर्वक मेरी सेवा मे रत है परन्तु लाल ! मैने तुम्हारे जैसे सात लालो को जन्म दिया लेकिन मातृत्व के कर्तव्य का निर्वाह करने का आनन्द मैं प्राप्त न कर सकी। यही मेरी चिन्ता का विषय है। तेरा लालन–पालन गोकुल मे हुआ, तेरे जन्म से पहले तेरे छह भाई जनमे, जिनके विषय मे मे समझती थी कि वे कस के द्वारा मार दिये गये परन्तु अब ज्ञात हो गया कि वे सुरक्षित ह ओर मुनि बन कर आध्यात्मिक साधना कर रहे है। ऐसी असाधारण अद्वितीय सात सन्तानो को जन्म देने के बावजूद मैं मातृत्व के दायित्व से वचित रही, यही मेरी उदासी का कारण है।

कृष्ण ने सोचा–माता, मातृत्व के कर्तव्यो को न निभा पाने के कारण चिन्तित है, उन्हे ऐसा प्रसग प्राप्त नहीं हुआ तो क्यो न मैं बालक बन कर उनकी इच्छा की पूर्ति कर दू । उन्होने कहा–'माता, आप चिन्ता न करे। मै अभी आपकी इस अभिलाषा की पूर्ति कर देता हूँ।' ऐसा कह कर कृष्ण ने अपनी

कृष्ण वासुदेव आज नमन के लिए माता देवकी के पास पहुचे। उस समय देवकी अपने कर्तव्य के विषय मे गहन चिन्तन कर रही थी। वह उदास मुद्रा मे बैठी थी। अन्यथा जब कृष्ण वासुदेव वन्दन के लिए आते, तब माता उनको देख कर बडी प्रफुल्लित होती थी और उन्हे आशीर्वाद देती थी। लेकिन आज कृष्ण ने देखा कि माता उदास बैठी है। मेरे आगमन की बात भी उन्होने न जानी। नजदीक आकर कृष्ण ने माता के चरणो मे मस्तक झुकाया। बन्धुओ ! क्या आप भी इस प्रकार विनयपूर्वक गुरुजनो के सन्मुख मस्तक नमाते है। क्या सतो को भी विधिपूर्वक उठ–बैठ कर वदना करते है या खडे–खडे ही 'मत्थेण वन्दना' कर लेते है ? शरीर को कष्ट कौन दे ? सतो को आपकी वन्दना की कामना नही है लेकिन यह वन्दना की विधि नही है। यह अविनय और अविधि है। मुह के आगे रुमाल या दुपट्टा लगा कर उठ–बैठ कर वन्दना करने और चरण छूने से सतो के प्रति विनय प्रकट होता है और आपका अभिमान गलता है। माता–पिता आदि गुरुजनो को मस्तक नमा कर वन्दन करना चाहिए।

कृष्ण वासुदेव ने अपना मस्तक माता देवकी के चरणो मे झुकाया। प्रगाढ स्पर्श से माता का ध्यान आकर्षित हुआ। माता बोली, 'कन्हैया, आ गया रे !'

कृष्ण बोले हा, माताजी ! मै आ गया। परन्तु आज आप उदास क्यो है ? क्या बात है ? आपका पुत्र त्रिखडाधिपति कहलाता है, सारे राज्य की जनता की सुधि लेने वाला है, प्रत्येक व्यक्ति के आसू पोछने वाला है, उसकी माता दुखी और उदास हो, यह मै नहीं देख सकता। मुझ से या परिवार के किसी सदस्य से

लब्धि से छोटे शिशु का रूप धारण कर लिया ओर मा की गोद मे बैठ गये।

माता अपने छोटे शिशु को–छोटे से कन्हैया को मातृत्व स्नेह से सिञ्चित करने लगी अर्थात् विविध प्रकार से लाड लडाने लगी। मा की ममता उमड पडी और वात्सल्य की सरिता बहने लगी।

कृष्ण अपनी बाल लीला बताने लगे। वे बोले, 'मा ! दूध।' माता कटोरे मे दूध भर लाई और पिलाने लगी। दूध का एक घूट लेते हुए बच्चा बोला, 'मा, मीठा नही है यह तो फीका है।' माता ने दूध मीठा करने के लिए शक्कर डाली। फिर एक घूट लेकर बच्चा बोला 'मा यह तो बहुत मीठा हो गया, मै नही पीता। शक्कर निकाल लो। मा, शक्कर निकाल लो।

माता–'दूध मे से शक्कर नही निकाली जा सकती बेटा ! दूसरा दूध ल आती हूँ।'

बालक नही मा, मै दूसरा दूध नही पीऊगा। इसी मे से शक्कर निकालो न, मा।

बच्चा मचलने लगा। हठ करने लगा। बाल हठ प्रसिद्ध ही है। माता हैरान हो गई । बोली–'लाल ! तुम्हारी लीला समेटो।'

कृष्ण ने वैक्रिय लब्धि समेट ली। वे अपने मूल स्वरूप मे माता के सामने खडे हो गये, माता से पूछा– 'मा, तुम्हारी तुष्टि हुई ?'

के सामने रुमाल लगाना चाहिए। यह अपनी धार्मिक मर्यादा है। साथ ही यह शिष्टाचार भी है। कई बार बोलते समय मुह से थूक भी निकल पडता है, यह अशिष्टता है। अवएव विवेक का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए। धर्मस्थान मे गमनागमन करते समय ईर्या समिति का भी उपयोग करना चाहिए। रात्रि को पूज कर चलना चाहिए। इसके लिए उपकरणो की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। धर्मस्थानको मे बैठके, पूजणिया, रजोहरण, मुख वस्त्रिका, माला आदि उपकरणो की बहुलता होनी चाहिए ताकि बाहर से धर्माराधना करने हेतु आने वाले भाई–बहनो को भी उनका लाभ मिल सके। कई स्थानो पर ऐसी व्यवस्था है। देशनोक का सघ तो विचक्षण और विवेक–सम्पन्न है ही। प्रसगवश यह सकेत किया गया है।

कृष्ण ने पौषधशाला मे जाकर भूमि का प्रमार्जन किया शय्या सस्तारक बिछाया और तीन दिन का पोषधोपवास अगीकार किया। अपने पूर्व सगतिक देव को आह्वान करने हेतु उसका एकाग्रचित्त से ध्यान करने लगे।

ध्यान की महिमा अपार है। एकाग्रचित्त से जब मन के तार जुडते है तो देवता तो क्या, प्रभु के साथ भी सबध जुड सकता है। आप लोगो को फोन पर बात–चीत करने का अभ्यास है ही। जब आप डायल घुमाते है या आपरेटर से नम्बर माग कर तार जोडे जाते है तब बम्बई, कलकत्ता आदि दूर–दूर के स्थानो से आप बातचीत करते है। फोन करते समय सब ओर से अपना ध्यान हटाकर आप केवल सम्बधित व्यक्ति से ही बात करने मे ही तन्मय रहते है, तब बात हो पाती है। इसी तरह जब चित्त के तार जुडते

है तब दूर–दूर के पदार्थो से सम्पर्क किया जा सकता ह।

कृष्ण ने एकाग्र होकर देव का चिन्तन किया। तीन दिन की आराधना से देव सतुष्ट होकर उनके पास आया और बोला कि कहिये, मुझे क्यो याद किया गया है ? आप क्या चाहते हे ? कृष्ण ने अपना अभिप्राय उसके सामने रखा। देव ने तथाऽस्तु कहा और अन्तर्धान हो गया।

यथासमय देवकी ने आठवी सन्तान को जन्म दिया। वह अत्यन्त सुकोमल और सुन्दर बालक था। उसका नाम 'गजसुकुमार' रखा गया। महारानी देवकी ने अपने अरमानो के अनुसार उसमे सुसस्कार भरे। मातृत्व के कर्तव्यो का सम्यग् निर्वाह करते हुए उसने गजसुकुमार के जीवन को एक अनोखे ढाचे मे ढाला। कर्तव्य दृष्टि को लेकर देवकी ने अपने जीवन मे जो कमी महसूस की थी, उसकी पूर्ति गजसुकुमार के जीवन–निर्माण के माध्यम से कर रही है। उसकी चिर साधना,उसके अरमान, उसके मनोरथ परिपूर्ण हुए। उसने अपने को धन्य माना। वह कृतार्थ हुई।

माता देवकी के सस्कारो से गजसुकुमार के जीवन ने नई दिशा पाई। वह विरक्त हो गये और अनुपम आत्मसाधना मे लीन

आज तो बडी विचित्र स्थिति है। यदि कोई व्यक्ति धर्म–साधना के मार्ग मे लगना चाहता है तो उसके मार्ग मे रोडे अटकाये जाते है, अवरोध खडे किये जाते है, उसे साधना से हटाने के प्रयास किये जाते है। यदि वह व्यक्ति व्यसनो मे लग जाय उन्मार्ग

पर चलने लगे, बुरे रास्ते पर चल पडे तो कोई आकर हस्तक्षेप नही करेगा,कोई उसे आकर पूछेगा भी नही। परन्तु ज्योही वह साधना के पथ पर चलने को उत्सुक होता है, उसके अनेक सगे सम्बन्धी और स्नेही जन अपना अधिकार बताते हुए उसके मार्ग मे अवरोध उपस्थित करते है। विरले ही व्यक्ति ऐसे होते है जो उस आत्मा को साधना के पथ पर चलते हुए प्रोत्साहित और अनुप्राणित करते है।

बन्धुओ ! सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने नौ अन्तरग नेत्रो को सदा खुला रखता है। वह अपने कर्तव्यबोध को जागृत रखता है, सुविधि से चलता है और सुविधि को ही अपनाता है। इसलिए प्रार्थना की कडिया मे कहा है–

'श्री सुविधि जिनेश्वर वदिए हो ,वदत पाप पुलाय।'

आप भी सुविधिनाथ परमात्मा को वन्दन करिये । उनकी बताई हुए सुविधि पर चलिए। आपका भी जीवन मगलमय बनेगा।

देशनोक
4–9–75

****
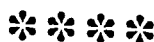
चेतन! अपने घर पर आओ!

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वदत पाप पुलाय।।
काकन्दी नगरी भली हो, श्री सुग्रीव नृपाल।
रामा तस पटरानी हो, तस सुत परम कृपाल।।
प्रभुता त्यागी राजनी हो, लीधो सयम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार।
अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
सुध समकित चारित्र नो हो परम क्षायक गुण लीन।।
ज्ञानावरण दर्शनावरण हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञानदर्शन बल ये तिहु हो प्रकट्या अनन्तानन्त।।

सुविधि जिनेश्वर वदिये हो०

प्रभु सुविधिनाथ के चरणो मे प्रार्थना की कडियो के माध्यम से वन्दन करने के लिए कवि प्रेरणा दे रहा है। प्रभु को वन्दन करने की प्रेरणा देते हुए कवि कहता है कि 'वदत पाप पुलाय।' प्रभु को वन्दन करने से पाप के पुज नष्ट हो जाते है। क्षीण हो जाते हैं। यह सही है कि प्रभु का वन्दन पापो को नष्ट करने वाला है लेकिन यह इतना सस्ता सौदा नही है। केवल हाथ जोड लिये या मस्तक नमा लिया, इतने मात्र से प्रभु का वन्दन नही हो जाता। न इतना कर लेने मात्र से पाप के पुज नष्ट होते है। जब सुविधिनाथ

परमात्मा और उनकी बताई हुई सुविधि (सन्मार्ग) मन की गहराई मे उतरती है, तब सहज रूप से परमात्मा के प्रति जो समर्पण भाव पैदा होता है वही वास्तविक वन्दन है और ऐसा वन्दन ही पाप के पुजो को नष्ट करने मे समर्थ होता है।

आत्मा अपने मूल रूप मे स्फटिक मणि के समान निर्मल है परन्तु बाह्य उपाधियो को लेकर वह विकारी भावो से मलिन हो रही है। उस पर अनादि काल से कर्मो की परते चढी हुई है। इनके कारण वह आत्मा ससार की विविध विडम्बनाओ का अनुभव करती हुई विभिन्न दशाओ को प्राप्त होती रहती है। विकारी भावो के कारण आत्मा की पवित्रता कलकित हुई, उसका चेतन्य अवरुद्ध हुआ, मोह माया के बन्धनो मे वह कैद हुई ओर मोह की प्रगाढ निद्रा ने उस पर अपना आधिपत्य जमाया।

मोह की मदिरा

विकारी भावो से परिणत आत्मा की ज्ञान–ज्योति को मोह की काली घटाओ ने आवृत्त कर लिया, मोह की प्रगाढ निद्रा ने उसके सहज विवेक को विलुप्त कर दिया और मोह की मदिरा ने उसे उस स्थिति मे ला पटका, जहा वह अपना घर छोडकर दूसरे के घर को अपना मानने लगी, वह स्व तत्त्व को छोडकर पर तत्त्व मे रमण करने लगी। वह अपने चैतन्य स्वरूप को छोडकर जड पुद्गलो की परिणति को अपना मानने लगी। यह शरीर मेरा है यह भौतिक साधन–सामग्री मेरी है, मकान मेरा है, आभूषण और वस्त्र मेरे है। मोह की इस मादक मदिरा ने आत्मा को केवल बेभान

ही नही बनाया वरन् उसे इतना सम्मोहित कर लिया कि उसे जड पुद्गल ही अच्छे लगने लगे, वह उनमे ही रमण करने लगी, पुद्गल ही पुद्गल उसकी दृष्टि मे चढने लगे, वह अपने स्वरूप को तो सर्वथा भूल ही गई ! कितनी मादक है, यह मोह की मदिरा ! बडी दुर्दशा की है इसने आत्मा की ! अपना घर छोडकर जो दूसरे के घर मे जाता है, उसकी कैसी दुर्दशा होती है, यह आप सब समझते ही है !

आत्मा की इस दुर्दशा से मुक्ति तभी हो सकती है जब मोह की मदिरा का मादक प्रभाव दूर हो। जब आत्मा पर–भाव को छोडकर स्व–भाव को समझने लगेगी, जब उसका पुद्गल के प्रति सम्मोहन हटेगा, जब उसकी दृष्टि सही को समझने लगेगी, जब उसे अपने मूलस्वरूप का ध्यान आएगा, जब वह पुन अपने घर लौटेगी, तब वह दुर्दशा से छूट सकेगी। यदि आत्मा को इस दुर्दशा से छुटकारा पाना है तो उसे अपने घर आना पडेगा, पुद्गलो के सम्मोहन को भगाना पडेगा, मोह की प्रगाढ निद्रा को छोडना होगा और अपने मौलिक स्वरूप को पहचानना होगा, पौद्गलिक सम्मोहन के विरुद्ध सतत जागृति रखनी होगी। पूर्वाचार्यों ने इस जागृति का सदेश देते हुए कहा है –

जागरह ! णरा णिच्चं
जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धि

—वृहत् कल्पभाष्य

मुनष्यो ! जागो ! निद्रा को छोडो। जो जागता है, उसकी बुद्धि भी

जागती है। उसके विकास की अनन्त सम्भावनाए सामने खडी रहती है।

प्रभु सुविधिनाथ ने मोह की प्रगाढ निद्रा को भग करने और आत्मा को जागृत करने के लिए सुविधि बताई है। न केवल उन्होने सुविधि ही बताई परन्तु उस विधि पर स्वय चलकर जगत् के जीवो के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया। वे आत्मानुभव से निर्विकार स्वरूप को प्राप्त हुए।

प्रभु सुविधिनाथ ने आत्मा के यथातथ्य स्वरूप को समझा और पौद्गलिक पदार्थों की चुम्बकीय आकर्षण शक्ति को आत्मानुभूति से निष्फल कर दिया। वे राज्य का परित्याग कर स्व-स्वरूप की साधना मे लगे। सत्ता और सम्पत्ति मे अजीब मादक शक्ति हुआ करती है। यही मधु के बिन्दु हैं, जिनमे ससारी प्राणी ललचा रहे है। सत्ता और सम्पत्ति का नशा मानव को मदहोश बना देता है, वह अपने आप पर नियन्त्रण खो देता है, उसकी विवेक-दृष्टि विलुप्त हो जाती है, उसके अन्तर्-नेत्र बन्द हो जाते है, आध्यात्मिक दृष्टि से वह अधा बन जाता है। सत्ता और सम्पत्ति से आसक्ति हटे बिना मानव को सही रास्ता नहीं दिखाई देता। इस तथ्य को सुविधिनाथ परमात्मा ने समझा और दुनिया के लोगो को यह तथ्य समझाने के लिए उन्होने राज्य का परित्याग कर दिया।

न केवल सुविधिनाथ प्रभु ने अपितु सभी तीर्थंकरो ने इस पद्धति को अपनाया है। उन तीर्थंकरो के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने की इच्छा वाले तथा उनके अनुशासन मे रहने वाले अनेको

महापुरुष इस मार्ग पर अग्रसर हुए है। आचाराग मे कहा गया है –

पणया वीरा महावीहि।

वीर पुरुष इस मार्ग पर–इस महापथ पर चले है, चलते है और चलते रहेगे। जो इस महापथ पर बढते है, वे सुविधिनाथ परमात्मा की तरह निर्विकार पद को प्राप्त करते है। इसीलिए कहा है –

प्रभुता त्यागी राज नी हो, लीधो सजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वन्दत पाप पुलाय।

कवि जिनको वन्दन करने की प्रेरणा दे रहा है, वे सुविधिनाथ, राजसिहासन पर आसीन सुविधिनाथ नही है अपितु जिन्होने राजसिहासन को छिटकाया और जिन्होने अपने आत्मानुभव के अधार पर निर्विकार स्वरूप प्राप्त किया, उन सिद्ध स्वरूप भगवान् को वन्दन करने के लिए प्रेरण दे रहा है। वन्दन करने वाले भक्तजन परमात्मा के इस स्वरूप को अपने सामने रखते है और अपनी आत्मा के स्वरूप को भी वैसा ही जानते है, वे कर्मों के आवरणो से मुक्त हो सकते है।

अष्ट कर्मो का राजा . मोह .

अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ने आत्मा के प्रबल विरोधी और प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी आठ कर्मों का निरूपण किया है। आत्मा की अनन्त शक्ति को प्रतिहत करने वाले ये कर्म बडे प्रबल

है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गौत्र और अन्तराय–ये आठ कर्म आत्मा को अपने घेरे मे कैद किये हुए है। स्वतन्त्र और सार्वभौम चेतनराज, पराये घर जाकर –पर परिणति मे पडकर – कर्मों के चगुल मे फस गया है। उसकी स्वतन्त्रता, सार्वभौमता, अनन्त शक्ति–सम्पन्नता छीन ली गई है। कर्म लुटेरो ने उसके वैभव को लूट लिया है। वह अभी दीन–हीन–अवस्था मे कर्मों की कैद मे पराधीन दशा भोग रहा है। इन कर्म–लुटेरो का सरदार 'मोह' बडा दुर्दान्त है। वह आठ कर्मों का राजा है। ससार मे इस मोहराज का बडा वर्चस्व है। चारो तरफ इसका प्रभाव फैला हुआ है। गजब की मोहनी शक्ति है इस मोह मे ! इसके बन्धनो को तोडना आसान नही, बहुत टेढी खीर है। दृढ फौलाद और लोहे की जजीरो को तोडना आसान है परन्तु मोह के कच्चे धागे को तोडना बहुत कठिन है ! कैसी मोहनी शक्ति है मोह की ! अपने पराक्रम से धरातल को कपा देने वाले बडे–बडे शूर–वीर इस धरातल पर आये है, दुनिया मे उन्होने तहलका मचाया है परन्तु वे भी मोह की मोहनी शक्ति के सामने श्वान की तरह दुम हिलाते रहे है।

मोह की प्रबल शक्ति का रहस्य उसका विकराल स्वरूप नहीं, अपितु उसकी सम्मोहनी शक्ति है, मोह के विविध मायावी स्वरूप है। इन मायावी लुभावने विविध रूपो से वह जगत् के जीवो की–चेतन की – मति को भ्रान्त करता है। मति के भ्रान्त होते ही सब मिथ्या प्रतीति होने लगती है, वस्तु का स्वरूप भ्रान्त दिखने देने लगता है – चेतन मिथ्यादृष्टि बन जाता है। उसकी निज

शक्ति लुप्त हो जाती है। वह सम्यक्–असम्यक् का निर्णय नहीं कर पाता, कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक नहीं हो पाता। अतएव उसके सारे प्रयत्न विपरीत दिशा मे होते रहते है। अपने मूल स्वरूप के प्रति वह असावधान रहता है और पर–पदार्थों को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। यह मिथ्या दृष्टि ही उसे अनन्तकाल तक ससार चक्र मे परिभ्रमण कराती है। यह सब मोह की ही माया है। अतएव उसे सब कर्मों का राजा और ससार का मूल कहा जाता है।

सुविधिनाथ भगवान् ने इस मोह को सर्वप्रथम क्षय किया। इसी बात का कवि ने प्रार्थना मे सकेत देते हुए कहा –

अष्टकर्म नो राजवी हो मोह प्रथम क्षय कीन।
सुध समकित चारित्र नो हो परम क्षायक गुण लीन।।

प्रभु सुविधिनाथ ने अष्टकर्मों के राजा मोहनीय कर्म का पहले क्षय किया और इसके फलस्वरूप उन्हे क्षायिक सम्यक्त्व, और क्षायिक चारित्र की प्राप्ति हुई।

जिस प्रकार राजा के परास्त हो जाने पर सेना बिखर जाती है, उसी तरह मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर अन्य कर्म भी शिथिल बन जाते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म रूप शेष बचे हुए घाती कर्म अन्तर्मुहूर्त मात्र समय मे नष्ट हो जाते है और आत्मा मे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तशक्ति प्रकट हो जाती है। यही बात कवि ने इन पक्तियो मे कही है –

चेतन ! अपने घर पर आओ !

ज्ञानावरण, दर्शनावरण हो, अन्तराय कियो अन्त ।
ज्ञान दर्शन बल मे तिहु हो, प्रगट्या अनन्तानन्त।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो०

यह अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति ही आत्मा का अपने घर मे लौट आना है। अपनी स्वाभाविक स्थिति को पा लेना है। यही सब ससारी आत्माओ का लक्ष्य और साध्य है।

भ्रान्त धारणा

कई व्यक्तियो की यह अभिलाषा रहती है कि माल भी खाना और मोक्ष मे भी जाना। वे दोनो हाथ लड्डू रखना चाहते हैं परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। कई अधूरे–अधकचरे विचारको ने यह सस्ता नुस्खा भोले जीवो को भ्रमित करने के लिए पकडा दिया है। ऊपर – ऊपर से यह नुस्खा बडा मोहक और लुभावना लगता है। हर कोई ऐसा सीधा–सरल तरीका अपनाना चाहता है। परन्तु बन्धुओ ! याद रखना चाहिए कि एक म्यान मे दो तलवारे नही रह सकतीं। पदार्थों का मोह भी बना रहे और मोक्ष भी मिल जाय–ऐसा कभी न हुआ है और न होगा। यदि ऐसा सीधा रास्ता होता तो अतीत काल के तीर्थंकर और महापुरुष राज्य और वैभव–विलास के परित्याग और वनो मे रहकर कठोर तप और साधना करने का कठिन मार्ग न अपनाते।

भोग–विलास और ऐश्वर्य के वातावरण मे रहकर भावना के बल पर मोक्ष की साधना की बात जितनी

उसका आचरण उतना ही कठिन है। सत्ता और सम्पत्ति को, चाहे वह व्यक्तिगत हो या राष्ट्रीय हो, अपने अधीन रखने वाला व्यक्ति अपनी भावना को सात्विक रख सके, यह अत्यन्त ही कठिन और दु शक्य है। यदि भावना की शुद्धि से ही आत्मा को ऐसी परम उपलब्धि हो जाती होती तो सुविधिनाथ भगवान् या अन्य तीर्थंकर और दूसरे हजारो महापुरुष राज्य वेभव को न छोडते और तपश्चर्या के कठोर मार्ग का अवलम्बन न लेते और न ऐसा करने का उपदेश ही देते। अत इस मिथ्याधारणा को दिमाग से हटा देना चाहिए। इस सस्ते नुस्खे के चक्कर मे नही आना चाहिए। यदि इस नुस्खे का सहारा लिया जाएगा तो यह आत्मवचना होगी।

आत्मा की वर्तमान विडम्बनापूर्ण स्थिति पर–पदार्थों के ससर्ग के कारण ही तो है। इस ससर्ग को हटाये बिना आत्मा का उद्धार कैसे हो सकता है ? पदार्थों की ममता–मूर्छा ही तो आत्मा को मलिन कर रही है। यदि हम आत्मा रूपी दर्पण को स्वच्छ करना चाहते हैं तो इस ममता के मैल को धोना ही पडेगा। अतएव बाह्य पदार्थों की ममता का परित्याग करके ही साधना के मार्ग मे आगे बढा जा सकता है। अनेक महापुरुषो ने यही मार्ग अपनाया और इसी से आत्मा को कर्मों की कैद से मुक्त किया है। अन्तगड सूत्र के माध्यम से ऐसे ही महापुरुषो के चरित्र आप श्रवण कर रहे है।

गजसुकुमार मुनि

त्रिखण्डाधिपति वासुदेव महाराज के भव्य भवन मे जिनका जन्म

हुआ, राजसी वैभव के बीच जिनका लालन–पालन हुआ, उस आत्मा ने अरिष्टनेमि भगवान् का एक ही उपदेश सुना और उससे ही उसके जीवन ने नया मोड ले लिया।

भगवान् अरिष्टनेमि ने ऐसा क्या उपदेश सुनाया होगा ? गजसुकुमार को कोई अनोखा ही उपदेश दिया हो, ऐसी बात नहीं है। उपदेश तो वही होता है जो आमतोर पर दिया जाता है। तीर्थंकर उपदेश देने मे कोई भेदभाव नहीं रखते। आचाराग मे कहा गया है –

जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ।

– आचाराग

तीर्थंकर सब जीवो को समान रूप से उपदेश प्रदान करते है। पुण्यवन्त और श्रीमन्त को जिस भाव से उपदेश देते हैं, उसी भाव से सामान्य व्यक्ति को भी उपदेश देते है। सामान्य व्यक्ति को जिस भाव से हितोपदेश देते हैं, उसी भाव से अभिजात्य– श्रेष्ठ वर्ग को भी उपदेश देते हैं।

भगवान् नेमिनाथ की देशना सब जीवो के लिए समान रूप से हुई थी। गजसुकुमार के लिए कोई विशेष प्रकार का उपदेश नहीं दिया गया था। पात्र के अनुसार उपदेश का प्रभाव हुआ करता है। गजसुकुमार सुयोग्य पात्र था। उसकी आत्मा सुसस्कारित और निर्मल थी। स्वच्छ हृदय पर उपदेश का प्रभाव प

अकित होता है। जिसका हृदय स्वच्छ नही होता, जिसके मन मे सरलता नही होती, उस पर हजारो उपदेशो का भी कोई असर नही होता। गजसुकुमार की आत्मा विशिष्ट सस्कारो से सम्पन्न थी, उसका हृदय स्फटिक के समान निर्मल था। अतएव प्रभु की वाणी उसके अन्तर–तर मे उतर गई। वह एक ही उपदेश से प्रतिबुद्ध हो गया। प्रभु का उपदेश सीधा–सादा था –

'बहु पुण्य केरा पुज थी नर देह मानव नो मल्यो।
तो पण अरे भव चक्र नो एके नहि आटो टल्यो।।'

भाइयो ! बहुत पुण्य के पुज एकत्रित होते है तब मानव का शरीर प्राप्त होता है। यह अत्यन्त दुर्लभ उपलब्धि है। ऐसे सुन्दर सुअवसर को प्राप्त करके यदि भवचक्र को मिटाने का प्रयास नहीं किया और आत्मा की वही स्थिति बनी रही, भवचक्र का एक भी चक्र कम नही हुआ तो बहुत पुण्य से प्राप्त मानव–भव अकारथ ही चला जायगा। चिन्तामणि रत्न पाकर कौए को उडाने मे यदि उसे फैक दिया तो चिन्तामणि का पाना न पाना एकसा ही हो जाता है। मानव–भव चिन्तामणि रत्न के समान है। इसका सदुपयोग आत्मा के कल्याण के लिए कर लेना चाहिए।

प्रभु की इस आशय की देशना गजसुकुमार के कानो मे ही नही, हृदय मे उतर गई। उसे तीन खण्ड का आधिपत्य भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। उन्होने प्रभु के पास सयम अगीकार करने का सकल्प कर लिया।

घर आकर गजसुकुमार ने माता–पिता और परिजनो के समक्ष अपना सकल्प प्रस्तुत किया और सयम अगीकार करने हेतु अनुमति चाही। गजसुकुमार की प्राप्ति जिन परिस्थितियो मे हुई उनको दृष्टि मे रखते हुए माता–पिता का विशेष अनुराग उनके प्रति होना स्वाभाविक था। देवकी महारानी, महाराज वसुदेव तथा त्रिखण्ड के अधिपति कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमार को अपनी–अपनी पद्धति से समझाने का प्रयास किया। उन्होने उन्हे त्रिखण्ड का स्वामी बनाने की अभिलाषा व्यक्त की और उनको सिहासन पर अभिषिक्त भी कर दिया।

गजसुकुमार का वैराग्य कच्चा नहीं था, जो सिहासन पाकर उतर जाय। वैराग्य उनके अन्त करण मे जागृत हुआ था। राज्य वैभव को उन्होने तृण के समान तुच्छ समझा। अन्ततोगत्वा उन्होने समग्र राज्य वैभव और विलास की साधन–सामग्री को नासिका के मैल की तरह छिटका दिया। उन्हे यह भी ज्ञात था कि उनके विवाह सम्बध हेतु अनेक कन्याए कन्याओ के अन्त पुर मे एकत्रित थीं। उन सबको छोडकर और कुटुम्ब के मोह बन्धनो को तोड कर वे उमगपूर्वक भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुच गये। वे सयम पथ के पथिक बन गये।

अन्तिम आराधना

गजसुकुमार अपने साथ पूर्वभव की कुछ विशिष्ट योग्यताओ और उपलब्धियो को लेकर आये थे। वे चरम शरीरी आत्मा थे। उनकी आत्मा की गहराई मे कोई अनोखे ही बीज रहे हुए थे,

चेतन। अपने घर पर आओ।

देगे, "महाराज। एकदम तो नहीं, थोडा-थोडा करके छोडने का प्रयास करेगे। यदि यो 'थोडा-थोडा' करने मे ही रह गये और अगले जन्म का आयुष्य बध गया तो जीवन की स्थिति कुछ और ही हो जायेगी। इसलिए जो करना हो सो शीघ्रता से कर लो।

प्रभु महावीर ने कहा -

समय गोयम। मा पमायए

—उत्तराध्ययन सूत्र

"गौतम। समय मात्र का भी प्रमाद न करो।" जीवन का कोई ठिकाना नही। एक श्वास के बाद दूसरा श्वास आएगा भी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति मे आज का काम कल पर डालना मूर्खता है। 'कल कल' करते जीवन का प्रवाह बहता चला जाता है और न जाने किस क्षण यह रुक जाय? क्या भरोसा है जीवन का? अतएव धर्म-साधना मे तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

अरिष्टनेमि भगवान् सर्वज्ञ थे। उन्होने गजसुकुमार मुनि के भवितव्य को अपने ज्ञान द्वारा जान लिया था। उन्हे ज्ञात था कि यह असाधारण आत्मा असाधारण रीति से असाधारण पराक्रम द्वारा अपने लक्ष्य को अविलम्ब प्राप्त करेगा। इसलिए उन्होने कहा - "मुनिवर। अति शीघ्र मुक्ति - लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा का आराधन करना पडता है।"

गजसुकुमार - "भते। मुझे इस प्रतिमा का स्वरूप समझाइये। मै इसका आराधन करूगा।"

प्रभु बोले – "देवानुप्रिय ! इस प्रतिमा का श्मशान मे आराधन किया जाता है। वहा अकेले ध्यान–मग्न रहना होता है। साथ मे दूसरा कोई नहीं रहता। एक रात्रि का उसका कालमान है। इस स्थिति मे देव–दानव–मानव–पशु सम्बन्धी कोई भी उपसर्ग आवे तो उससे भयभीत न होते हुए, उसे समभाव से सहन करना होता है। यदि इस प्रतिमा को यथारीति से साध लिया जाता है तो अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान अथवा केवलज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई साधक साधना से विचलित हो जाय तो वह पागल हो जाता है, दिमाग का नियत्रण खो देता है और जीवन का रूपक बदल जाता है। ऐसी विकट है यह साधना !"

गजसुकुमार मुनि – "भते ! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं महाकाल श्मशान मे जाकर बारहवी भिक्षु प्रतिमा का आराधन करूगा।

प्रभु सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिष्टनेमि भावी–भाव के ज्ञाता थे। त्रिकाल की बात उनके ज्ञान मे झलकती थी। उन्होने आज्ञा प्रदान कर दी। शास्त्रीय दृष्टि से श्मशान मे वही साधना कर सकता है जिसकी 29 वर्ष की अवस्था हो और 20 वर्ष की दीक्षा पर्याय हो। गजसुकुमार मुनि मे ये दोनो बाते नही थी वे तो उसी दिन के थे। परन्तु केवलज्ञानी प्रभु अपने ज्ञान मे समस्त भावी घटना चक्र को देख रहे थे। विशेष योग्यता, विशेष परिस्थिति, विशेष द्रव्य, क्षेत्र काल भाव की परिणति को लक्ष्य मे रखकर उन्होने इस प्रतिमा को साधने की अनुमति दी।

गजसुकुमार मुनि प्रतिमा आराधन हेतु उस रात्रि मे श्मशान

निर्मोह की पराकाष्ठा

मस्तक पर अगारे धधक रहे है। उधर मुनि के शान्त हृदय मे चिन्तन की अजस्र धारा वह रही है। वे सोच रहे हैं – 'जो जल रहा है वह मैं नहीं हू।' जो 'मैं' हू वह जल नहीं सकता। यह शरीर तो एक दिन जलने ही वाला है, आज नही तो कल, कल नहीं तो कालान्तर मे, उसकी अन्तिम परिणति इसी रूप मे होनी है। यदि वह आज ही इस स्थिति मे पहुच रहा है तो दुःख किस बात का ? पुद्गल पुद्गल मे मिल रहा है। मेरा चेतन तो शाश्वत है वह अजर–अमर है। वह जल नही सकता। वह तो इस आग मे पडकर स्वर्ण के समान निखर रहा है। बडा उपकारी है सोमिल जो मेरी आत्मा को इस पुद्गल पिड से सदा के लिए मुक्त करने मे सहायक बना है। यह सासारिक सम्बन्ध से मेरा भावी श्वसुर होता और मुझे उस नाते पगडी बधवाता। वह पगडी सासारिक स्थिति को बढाने वाली बनती। परन्तु आज यह मुझे ऐसी पगडी पहना रहा है जिसे पहन कर मै मुक्ति का वरण करने जा रहा हू। बडा उपकार है सोमिल का।'

कितनी उत्कट है निर्मोह दशा। कितनी उज्ज्वल है चिन्तन धारा। कितना गहरा है आत्मा और शरीर के भेद–विज्ञान का यह साक्षात् अनुभव। कितनी उदात्त है यह जीवन्मुक्त अवस्था। शरीर जल रहा है, आत्मा निखर रही है। समभाव की साधना चल रही है। न शरीर के प्रति मोह है न सोमिल के प्रति द्वेष। साधना की यह सर्वोच्च स्थिति है। गजसुकुमार मुनि समभाव की पराकाष्ठा

पर पहुच गये और केवलज्ञान–दर्शन प्राप्त कर मुक्त हो गये, सिद्ध हो गये। उन्होने जीवन का जो लक्ष्य निर्धारित किया था उस ओर अद्वितीय पौरुष के साथ चले और असाधारण शीघ्रता से मजिल पर पहुच गये। वे अजर अमर हो गये और ज्योति मे ज्योति की तरह परमात्मस्वरूप मे लीन हो गये।

बन्धुओ ! कितना प्रेरक, कितना बोधदायक और कितना हृदयस्पर्शी चरित्र है गजसुकुमार मुनि का ! हम प्रति वर्ष उनके इस समुज्ज्वल चरित्र को सुनते--सुनाते चले आ रहे है लेकिन इससे शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं करते ! महापुरुषो के चरित्र इसीलिए सुनाये जाते है कि उनसे हम भी बोध प्राप्त करे और उनके जीवन की रोशनी से अपने जीवन मे भी प्रकाश करे।

गजसुकुमार मुनि का जीवन सहनशीलता, दृढता और समता का ज्वलत आदर्श है। उस आदर्श तक हम और आप भले ही एकदम न पहुच पाए परन्तु उस लक्ष्य को, आदर्श को सामने रखकर जीवन मे सहनशीलता, दृढता और समता का अभ्यास किया जाना चाहिए। जीवन मे यह प्रयत्न–साध्य है। असम्भव नहीं। इस काल मे भी ऐसे उदाहरण सामने आते है, जिनमे आत्मिक दृढता और शारीरिक कष्टो के बीच सहिष्णुता की अद्भुत क्षमता का परिचय मिलता है।

सहिष्णुता की क्षमता

सन् 1915 की घटना है। काशी–नरेश के पेट का
किया जाना था। ऑपरेशन के पूर्व आमतौर पर रोगी को

किया जाता है। काशी नरेश ने कहा – डॉक्टर, मुझे बेहोश मत करिये। मै होश–हवास मे ऑपरेशन करवाना चाहता हूँ। डॉक्टर ने कहा – "बडा ऑपरेशन है, दो घटे लगेगे। इतने समय तक वेदना सहन नही की जा सकती। पेट चीरना है, मामूली काम नहीं है। इतनी वेदना इन्सान नही सह सकता। वह छटपटाने लगेगा, हिलेगा–डुलेगा ही नही, उछलने लगेगा, जीवन खतरे मे पडेगा और डॉक्टर का पटिया गोल हो जाएगा। मै यह खतरा लेने को कतई तैयार नही हूँ।"

काशी नरेश ने कहा, "मै दो घटे चू तक नहीं करूगा। आप ऑपरेशन करके देखिये। मै बेहोश होना नही चाहता।"

डॉक्टर को विश्वास नही हुआ। उसने नरेश की कसौटी के लिए प्रयोग करना चाहा। नरेश ने कहा – प्रयोग करके देख लो। प्रयोग शुरू हुआ। नरेश ने ध्यान लगा लिया। होश–हवास की स्थिति मे उनके हाथ पर चाकू का प्रयोग किया गया। खून बहा। नरेश बिल्कुल शान्त थे। दो घटो तक उन्होने चू तक नहीं की। डॉक्टर हैरान था। दो घटे के बाद डॉक्टर ने पूछा, "वेदना हो रही है ?"

उत्तर मिला, "इतनी देर तक तो नही किन्तु अब वेदना का अनुभव हो रहा है। पहले मेरी दृष्टि अन्यत्र थी, मेरी वृत्ति अन्यत्र लगी हुई थी, मेरा ध्यान अन्यत्र केन्द्रित था।"

डॉक्टर आश्चर्यचकित था। आखिर काशी नरेश की इच्छानुसार बिना बेहोश किये उनके पेट का ऑपरेशन किया

गया। वे असाधारण रूप से शान्त रहे। दो घटे तक बिल्कुल चुपचाप, बिना हिले–डुले शान्तभाव मे स्थिर रहे। यह अपने ढग का पहला उदाहरण है। यह एक ऐतिहासिक प्रसग है। कालान्तर मे उन्होने राज्य त्याग कर आध्यात्मिक साधना मे अपना जीवन लगाया।

स्व श्री जवाहराचार्य जी की सहिष्णुता

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म के जीवन की घटना का मुझे स्मरण आ रहा है। आचार्य श्री जब जलगाव मे विराजमान थे, तब उनके हाथ मे विषैला फोडा हो गया था। डॉक्टर मुलगावकर ने ऑपरेशन को अनिवार्य बताया। ऑपरेशन निश्चित हुआ। डॉक्टर ने उन्हे बेहोश करना चाहा। पूज्यश्री ने दृढता से कहा, "बेहोश करने की आवश्यकता नहीं है आप मेरी होश हवास की स्थिति मे भी ऑपरेशन कर सकते है।" डॉक्टर हैरान था। उसने पुन आग्रह और निवेदन किया परन्तु आचार्य श्री अपनी बात पर दृढ रहे। उन्होने अपना हाथ लम्बा कर दिया। ऑपरेशन किया गया और वे उसे इस रीति से देखते रहे मानो कोई अन्य व्यक्ति देख रहा हो। चू तक उनके मुख से न निकली। कितनी दृढता और सहिष्णुता है यह। यह तो अभी–अभी कुछ वर्षों पूर्व की घटना है। आपमे से कइयो को उस महान् विभूति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा।

उनके जीवन का एक और ऐसा ही प्रसग मेरी स्मृति मे उभर रहा है। बीकानेर मे आचार्य श्री के अदीठ फोडा हो था। वे स्वय उठ नही पाते थे। सत सहारा देकर उठाते "

बार सत उन्हे उठा रहे थे कि असावधानी से अगुली फोडे पर लग गई और खून निकल आया। सत घबरा गये। उस समय आचार्य श्री ने कहा, "कोई बात नही। क्यो घबरा रहे हो ? जान–बूझ कर तुमने ऐसा नही किया है। तुम्हारी कोई गलती नही है। सब ठीक हो जाएगा।" उन्होने यह भी नही कहा कि "कितने असावधान हो ! जरा भी ध्यान नही रखते ! अविवेक से काम करते हो।" तनिक भी उपालभ उन्होने नही दिया ! उन महापुरुष की ऐसी अद्भुत सहिष्णुता थी। आज तो जरा–सा काटा चुभ जाता है तो हाय ! हाय ! करते है। स्वर्गीय आचार्य श्री के चरित्र से भी दृढता और सहिष्णुता की सीख लेनी चाहिए।

स्वामी रामतीर्थ का एक प्रसग :

स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका गये थे, तब वहा के लोग उनके जीवन को देखकर आश्चर्य करते थे। वे अपने लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग नही करते थे। उनसे पूछा जाता कि "आपको भूख लगी है" तो उनका उत्तर होता – "राम को भूख लगी है।" आपको भूख लगती है या नही, यह पूछे जाने पर वे कहते – "राम को भूख लगती है।" लोग उनसे पूछते कि "राम का तात्पर्य क्या ? आप ऐसा क्यो कहते है ? यह राम कौन है ?" वे कहते, "इस शरीर का नाम राम है। शरीर को भूख लगती है, मेरी आत्मा को नही लगती ! मै अपने शरीर से परे हू। शरीर का ट्रस्टी होकर इसकी देख–रेख करता हूँ। इस प्रकार स्वामी रामतीर्थ शरीर और आत्मा के भेद को व्यवहार मे उतार कर बताते थे।

चेतन ! अपने घर पर आओ ।

स्थितप्रज्ञता

ये घटनाए तो अभी की कतिपय वर्ष पूर्व की है। मानव यदि प्रयत्न करे तो अपने जीवन मे ऐसे भेद-विज्ञान को लेकर चल सकते है। यदि मानव आत्मा और शरीर के इस भेद को समझता रहे तो जीवन मे दृढता आ सकती है और मोह का आवरण हल्का हो सकता है। मानव ऐसी साधना के बल से मृत्युजय बन सकता है। मृत्युजय बनने का तात्पर्य यह है कि वह मृत्यु के भय से ऊपर उठ जाता है। मृत्यु उसे डरा नहीं सकती, कर्तव्य-मार्ग से उसे विचलित नहीं कर सकती। शरीर का मोह उसे भ्रमित नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति आने पर आत्मा 'स्थित-प्रज्ञ' हो जाता है। क्रमश साधना के पथ पर आगे बढता हुआ वह अनन्त चतुष्टय का स्वामी बन जाता है। वह अपनी अनन्त शक्ति-सम्पन्नता को प्राप्त कर लेता है।

कृष्ण का प्रश्न और भगवान का समाधान ·

गजसुकुमार मुनि ने उत्कृष्ट साधना के द्वारा एक ही दिन मे अनादिकाल से चली आ रही भव-परम्परा की परिसमाप्ति कर दी और सोमिल ने उत्कृष्ट वैर भाव के कारण जन्म-मरण की परम्परा मे असख्य भावो की वृद्धि कर ली। सुदीर्घ काल तक वह ससार चक्र मे भटकता रहेगा। उसका भव-भ्रमण का चक्र लम्बे समय तक चक्कर लगाता रहेगा। गजसुकुमार मुनि ने अनन्त सुख को प्राप्त कर लिया, सोमिल भव-भवान्तर मे रुलता रहेगा। '
ने अनन्त प्रकाश पा लिया, दूसरा घने अन्धकार मे भटक

इधर त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव प्रात काल होने पर अपने लघुभ्राता के सयमी जीवन को देखने की आकाक्षा से प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शन और वन्दन हेतु आये। वन्दना करने के पश्चात् कृष्ण ने प्रश्न किया – भते ! गजसुकुमार मुनि दृष्टिगोचर नहीं हो रहे है, वे कहॉ है ?

भगवान् ने समाधान करते हुए फरमाया – "उन्होने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया। जिस प्रयोजन को लेकर वे दीक्षित हुए, वह उन्होने अत्यल्प काल मे ही परिपूर्ण कर लिया। उन्हे एक व्यक्ति का सहयोग मिल गया, जिससे उनका आवागमन का चक्र सदा के लिए बन्द हो गया। वे सिद्ध–बुद्ध हो गये, सब बन्धनो से मुक्त हो गये ! उन्होने अपना लक्ष्य साध लिया। वे कृतार्थ और सिद्धार्थ हो गये।"

"हे कृष्ण ! मेरे दर्शन हेतु आते समय जैसे तुमने उस वृद्ध, जर्जर और क्षीणकाय व्यक्ति को ईंट उठाकर सहयोग दिया और उसके हजारो चक्करो को मिटा दिया, इस प्रकार तुम उसके सहायक बने हो। ठीक इसी प्रकार वह व्यक्ति गजसुकुमार मुनि के आवागमन को मिटाने मे सहयोगी बना है। उसके प्रति तुम अन्यथा भाव न लाना !"

यह समाधान सुनकर कृष्ण के हृदय मे एक विचित्र सी भावानुभूति हुई। हर्ष और शोक की मिली–जुली अनुभूति से वे विभोर और गद्गद् हो गये।

सम्पन्न और सबल वर्ग मे उत्पन्न हो जाय तो समाज का सारा नक्शा, सारा चित्र ही बदल सकता है।

कृष्ण के इस प्रसग से यह प्रेरणा भी मिलती है कि हुकूमत करने की अपेक्षा स्वय काम करने का उदाहरण पेश किया जाय तो वह ज्यादा प्रभावोत्पादक होता है। कृष्ण महाराज चाहते तो सेवको को, नौकरो को, सेना को आदेश देकर काम करवा सकते थे, परन्तु उन्होने ऐसा नही किया और स्वय ने ईंट उठा कर रख दी। इसका कितना अच्छा परिणाम निकला। दूसरे सब लोगो ने स्वयमेव उनका अनुकरण कर लिया। बडे व्यक्ति जो काम करने लगते है, दूसरे भी उसका स्वयमेव अनुसरण करते हैं। अतएव यदि समाज मे आप अच्छी रीतिया स्थापित करना चाहते है, बुराइयो को हटाना चाहते है तो उसका शुभ आरम्भ बडे घरो से - प्रतिष्ठित समझे जाने वाले घरो से किया जाय तो वह शीघ्र ही समाज मे प्रचलित हो जाता है। इस दृष्टि से समाज के लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियो की बहुत बडी जिम्मेदारी होती है। कृष्ण के इस महान् आदर्श से अवश्य ही प्रेरणा लेनी चाहिए।

****

आध्यात्मिक जीवन का अनुसन्धान

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वदत पाप पुलाय।
प्रभुता त्यागी राजनी हो, लीधो सयम भार।।
निज आतम–अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार ।।श्री०।।
अष्टकर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
सुध समकित चारित्र नी हो, परम क्षायक गुण लीन ।।श्री०।।
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञान दर्शन बल तिहु हो, प्रकट्या अनन्तानन्त।।श्री०।।

श्री सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना की कडियो का आपके समक्ष उच्चारण किया है। प्रभु की प्रार्थना हृदय को आनन्द–विभोर बनाती है। भक्त का रोम–रोम प्रभु की प्रार्थना से पुलिकित हो उठता है, उसका अन्त करण प्रमुदित, हर्षित और उल्लासित हो उठता है। प्रार्थना के माध्यम से भक्त के हृदय–तत्री के तार झकृत हो उठते है इतना ही नहीं, प्रार्थना के समय भक्त के हृदय के तार परमात्मा के साथ जुड जाते है जिससे उसका हृदय प्रकाशमान

हो जाता है। पावर हाउस (बिजलीघर) से तारो के माध्यम से सबधित होते ही जैसे लट्टू (बल्ब) रोशनी से जगमगाने लगता है वैसे ही प्रार्थना के द्वारा परमात्मा का सम्पर्क होते ही भक्त का हृदय भी प्रकाशमान हो उठता है, पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है और वासनाओ की गदगी मिट कर हृदय साफ–सुथरा बन जाता है। प्रार्थना वह पथ्य है जो हृदय के रोगो को मिटा कर उसे आरोग्य और आनन्द प्रदान करता है।

विश्व के वातावरण पर विचार करते हुए प्रतीत होता है कि पापमय वासनाओ से आत्मा का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता चला जा रहा है, मानव–समाज विकारो की गन्दगी से बुरी तरह ग्रस्त होता चला जा रहा है। जहा गन्दगी का विस्तार है वहा स्वास्थ्य का ह्रास अवश्यम्भावी है। बाहर की गन्दगी अधिक से अधिक एक जीवन के लिए खतरनाक होती है लेकिन आभ्यन्तर गन्दगी एक नही, अनेक जन्म–जन्मान्तर के लिए खतरनाक होती है। इस आभ्यन्तर विकृति की भयकर परिणति सैकडो हजारो जन्मो तक अशुभ फल–परम्परा के रूप मे होती है। अतएव यह गन्दगी अत्यन्त भयकर है। इस गन्दगी को दूर हटाने के लिए मनुष्य को पहले यह देखना होगा कि यह गदगी कहा से आ रही है ? गन्दगी के उद्‌गम का सूक्ष्मता से विश्लेषण किये बिना उसको मिटाया नहीं सकता। बाह्य गन्दगी तो स्पष्ट मालूम होती है। कपडे मैले हैं, शरीर पर मैल जमा है, घर मे कूडा–कचरा इकट्ठा हो रहा है, मक्खियां भिनभिना रही है, डास–मच्छरो की बहुलता है। इन सबसे बाहरी गन्दगी को जान लिया जाता है और उसके निवारण

उपाय भी आसानी से किये जा सकते हैं परन्तु आभ्यन्तर गन्दगी विषय मे ऐसी बात नही है। उस आभ्यन्तर गन्दगी को पकड ना आसान नहीं है। बाह्य गन्दगी के सूक्ष्म कीटाणुओ को तो क्ष्मदर्शक यत्र द्वारा देखा जा सकता है परन्तु आन्तरिक विकृति सूक्ष्म अश आत्मा की भीतरी तहो मे इस प्रकार छिपे रहते है क उन्हे पकडने की शक्ति किसी सूक्ष्मदर्शक यत्र मे भी नहीं है। न्हे पकडने के लिए तो उनके अनुरूप यत्र की आवश्यकता रहती । वह यत्र हो सकता है –

आध्यात्मिक जीवन का अनुसन्धान

जब व्यक्ति बाहर से हट कर अन्दर की तरफ झाकने नगता है, इधर–उधर बाहर भटकना छोड कर जब वह अपने अन्दर देखना आरम्भ करता है तब उसे अन्दर की गन्दगी के कीटाणुओ की हरकत मालूम पडती है और वह आत्म–अनुसन्धान से उनके उद्‌गम को जानकर उसके निवारण हेतु प्रयत्नशील होता है।

मूल को पकडो -

यह आत्मा वासनाओ से सत्रस्त है। आज से नहीं, कल–परसो से नही, वर्ष–दो वर्ष से नही, हजारो–लाखो वर्षों से नही अपितु सख्यातीत अनादिकाल से आत्मा वासना की भूल–भुलैया मे फस कर चौरासी लाख जीवयोनियो मे भटक रहा है। उसकी इस दुर्दशा का, विडम्बना का, बीमारी का मूल क्या है ? उस मूल को पकडना आवश्यक है। ध्यान के सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म यत्र के द्वारा

मूल को पकडा जा सकता है। सुविधिनाथ भगवान् ने ध्यान के माध्यम से आत्मा की दुर्दशा के मूल को पकडा और उसे अपनी आत्मा से अलग हटाकर सच्चिदानन्दमय स्वरूप को प्राप्त किया।

श्री सुविधिनाथ परमात्मा ने ध्यान के सूक्ष्म यत्र से आत्मानुसन्धान किया और पाया कि यह आत्मा वासनाओ के गूढ और रूढ सस्कारो से सत्रस्त है। यह इसकी दुर्दशा का मूल है। इस मूल को उन्होने पकडा। टहनियो अेर पत्तो को नोचने की अपेक्षा मूल को उखाडना ही कारगर और सार्थक होता है। ऊपर की निष्पत्ति हटा दी जाने पर भी यदि मूल शेष रह जाता है तो वह पुन पनप उठता है। सुना जाता है कि बाजरे की टहनी कोमल अवस्था मे काट दी जाती है तो पुन फूट जाती है। मेवाड और मारवाड मे रिजका (रचका) नाम का पौधा होता है जिसे काटने पर वह पुन पनपता रहता है। उसकी समाप्ति तभी होती है जब उसे जड से उखाड दिया जाता है। अतएव वासनाओ को जड मूल से उखाडने का प्रयास करना चाहिए।

अफसोस इस बात का है कि मानव अपनी आत्मा को शुद्ध करने के लिए ऊपर–ऊपर से उपचार करता है लेकिन जड को नही पकडता है। जड को पकड कर उसे उखाडने का प्रयत्न नही करता है। मूलत सोचने का विषय यह है कि आत्मा की दुर्दशा का मूल क्या है ? उस मूल को ही पकडने का प्रयत्न किया जाय, पत्तो और टहनियो को नोचने का निरर्थक श्रम क्यो किया जाय ?

आत्मानुसन्धान के द्वारा श्री सुविधिनाथ भगवान् और अन्य

आत्मा की शक्तिया अनन्त है। उसके अनन्त गुण हैं। परन्तु मुख्यतया आत्मा मे आठ गुण कहे गये है। वे इस प्रकार हैं - (1) अनन्तज्ञान (2) अनन्तदर्शन (3) अव्याबाधसुख (4) क्षायिक सम्यक्त्व (5) स्वतन्त्रता-निर्बन्धता (6) अमूर्तत्व (7) अगुरुलघुत्व और (8) अनन्त बलवीर्य। ये आठ गुण आत्मा के सहज और स्वाभाविक गुण है। यह आत्मा की मौलिक स्थिति है। जिस प्रकार प्रकाश सूर्य की सहज स्थिति है परन्तु वह मेघों के आवरण से आवृत हो जाता है उसी प्रकार आत्मा मे ये आठो गुण सहज है परन्तु अनादिकालीन कर्मो के आवरण से ये आठ गु आच्छादित हो जाते है। इन गुणो को आच्छादित करने वाले आठ कर्म है - 1 ज्ञानावरणीय 2 दर्शनावरणीय, 3 वेदनीय, 4 मोहनीय, 5 आयु, 6 नाम, 7 गोत्र और 8 अन्तराय। ये आठो कर्म क्रमश आत्मा के आठो मूल गुणो को आच्छादित करते हैं।

इन आठ कर्मो मे मोह कर्म सबसे अधिक शक्तिशाली है। अतएव वह आठ कर्मो का राजा कहलाता है। मोह कर्म की जब तक प्रबलता रहती है तब तक अन्य सब कर्म भी शक्तिशाली बने रहते है। मोह कर्म के शिथिल होते ही अन्य कर्म भी शिथिल पड़ जाते है। जिस प्रकार राजा के पराजित होकर भाग जाने पर सेना भी स्वय भाग खडी होती है इसी पकार मोह के पराजित होते ही अन्य कर्म स्वय पराजित हो जाते है। अतएव मोह हो उखाडे बिना आत्मा का उद्धार होने वाला नही है। मोह को हटाने का पयास ही आत्मा के उद्धार का द्वार है। इसीलिए सुविधिनाथ पभु ने आठ कर्मो के राजा मोह को सर्वप्रथम क्षय किया और फलस्वरूप

ायक सम्यक्त्व और आत्म–रमणता प्राप्त की। आपका और हमारा लक्ष्य भी मोह को हटाकर आत्मा के उद्धार का द्वार खोलना है परन्तु यह काम आसान नहीं है। मोह की प्रबल शक्ति को तोडना साधारण काम नहीं है। इसके लिए दृढ सकल्प और अदम्य पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

भ्रान्त मान्यता

साधना के मार्ग पर चलते हुए जो बाधाए–कठिनाइया आती है उनसे अनेक साधक हार जाते है। वे अपनी कमजोरी के कारण साधना–पथ से विचलित होते है। परन्तु ऐसे कई साधक अपनी कमजोरी को स्वीकार करने के बजाय उस पर सुनहरा पर्दा डालने की कोशिश करते है। वे प्ररूपणा करने लगते है कि आत्मोद्धार के लिए कठिन साधना की कोई आवश्यकता नहीं है। अनासक्ति आ जाना ही पर्याप्त है। घर ससार और एश्वर्य के बीच रहकर भी आत्मसाधना हो सकती है। मोह–ममता को जीतना हमारा प्रयोजन है और यह प्रयोजन ससार की प्रवृत्तियो मे रहते हुए भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके लिए घर–द्वार छोड कर साधु बनने की कोई आवश्यकता नही है। यह प्ररूपणा यदि सदुद्देश्य से प्रेरित है तो किसी अश से यथार्थ हो सकती है परन्तु यह मार्ग कहने मे जितना आसान है उतना ही उस पर चलना कठिन है। यदि अनासक्ति की साधना और मोह–ममता को जीतना इतनी सरलता से सम्भव होता तो तीर्थंकर भगवन्त राज्य–वैभव का परित्याग करके सयम की साधना और कठोर तपश्चर्या का मार्ग क्यो अपनाते ?

तीर्थंकर गर्भ से ही अवधि ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। दीक्षा धारण करने के बाद मन पर्याय ज्ञान भी उन्हे प्राप्त हो जाता है। इतनी लब्धि और शक्ति से सम्पन्न होने पर भी वे कठिन तपोमय मार्ग पर चलते है। महीनो और वर्षों तक वे कठोर तप का आचरण करते है तब कही जाकर मोहकर्म को पराजित करने मे वे सफलता प्राप्त करते है। हम तो चाहते है कि हमे कठोर तप और श्रम न करना पडे और सहज ही मोह को जीत ले। यह कदापि सम्भव नही है। हम भले ही उक्त भ्रान्त धारणा के चक्कर मे पड कर अपने आपको धोखा दे ले, आत्म–वचना कर ले परन्तु इस तरीके से मोह पर विजय पाना कदापि सम्भव नहीं है।

तीर्थंकर–तुल्य महती शक्ति के धारक महापुरुषो ने भी जब मोह पर विजय पाने हेतु कठोर साधना का मार्ग अपनाया तो आपकी और हमारी क्या बिसात जो हम सहज ही–बिना किसी कठोर साधना के मोह को परास्त कर सके ? उन महापुरुषो ने कितनी कठोर जीवन–चर्या अपनाई ? कितने महीनो तक निराहार रहे ? कितने वर्षों तक परिषह उपसर्गों को स्थिर–चित्त से सहन करते रहे ? ध्यान की कितनी कठोर प्रक्रिया अपनाई ? हम और आप तो चार लोगस्स का ध्यान करने बैठते है तब भी मन इधर-उधर दौडने लगता है। जरा–सा मच्छर आकर बैठ जाता है तो उसे हटाने का प्रयास किया जाता है। ध्यान की धारा खण्डित हो जाती है। ऐसी स्थिति मे बिना विशेष प्रयत्न के सहज ही मोह को जीतने की बात करना आत्मप्रवचना मात्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि मोह को जीतना असम्भव है। मोह को जीता जा

सकता है परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि दृढ सकल्प और प्रबल पुरुषार्थ ।

पर्युषण पर्व के इन दिनो मे आप अन्तगड सूत्र का श्रवण कर रहे है। इस सूत्र मे उन महान् साधको का और साधिकाओ का वर्णन है जिन्होने दृढ सकल्प और प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा मोहकर्म पर विजय प्राप्त की और सकल कर्मों का क्षय करके जन्म–जरा मरण रूप ससार–चक्र का अन्त किया। उन महान् आत्माओ का वर्णन इन मागलिक दिवसो मे इसीलिए सुनाया जाता है कि उनके जीवन से प्रेरणा लेकर हम भी अपने जीवन को उसी दिशा मे मोडे।

स्त्री-पुरुष का भेद अपेक्षित नहीं .

साधना के क्षेत्र मे स्त्री–पुरुष का भेद अपेक्षित नहीं है। साधना का सम्बन्ध आत्मा के साथ है, शरीर के साथ नहीं। आत्मा तो न स्त्री है, न पुरुष। अत पुरुषत्व का अभिमान वृथा है। सस्कृत के कवि ने कहा है –

गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिग न च वय ।

गुणो का महत्त्व होता है। लिग या वय का महत्त्व नही। जिस प्रकार वस्त्रो का शरीर की शक्ति के साथ सम्बन्ध नही है, यदि पहलवान स्त्री–वेश धारण करले इससे उसकी शक्ति मे कोई अन्तर नही पडता, इसी प्रकार आत्मा के लिए स्त्री–पुरुष का शरीर वस्त्र–तुल्य है। स्त्री–शरीर हो या पुरुष–शरीर, इससे आत्मा की शक्ति मे कोई

अनेक महिलाओ ने साधना के क्षेत्र मे अद्वितीय पौरुष बतला कर सिद्धि प्राप्त की है। आजकल तो प्राय देखा जाता है कि पुरुषो की अपेक्षा महिलाए साधना के क्षेत्र मे तपस्या के क्षेत्र मे, धर्म के मामलो मे विशेष प्रगतिशील है।

अन्तगड सूत्र का वाचन–श्रवण चल रहा है। इसमे अनेक पुरुष–साधको द्वारा आत्म–कल्याण करने का उल्लेख किया गया है, वैसे ही अनेक महिला–साधको का भी विस्तार से उल्लेख है। त्रिखण्डाधिपति कृष्ण की पटरानियो ने भी सयम का मार्ग अपनाया था।

कृष्ण का कर्तव्य-पालन

अन्तगड सूत्र के माध्यम से द्वारिका नगरी की भव्यता और त्रिखडाधिपति महाराज कृष्ण के वैभव का वर्णन आप सुन चुके है। मै आपका ध्यान कृष्ण के वैभव से हटा कर कृष्ण के द्वारा किये गये कर्तव्य–पालन की ओर आकृष्ट करना चाहता हू। उन्होने अन्याय के प्रतिकार के लिए, राजा के नाते प्रजा के हित के लिए एव अपने परिवार और जनता को त्यागमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए जो कदम उठाये, वे सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दूरदर्शिता से भरे हुए थे। आप जानते है कि शिशुपाल ने रुक्मिणी को वरने हेतु कितना षडयत्र रचा, रुक्मकवर भी रुक्मिणी का

शिशुपाल के साथ करना चाहता था। लेकिन रुक्मिणी का दृढ सकल्प था कि वह कृष्ण के चरणो मे ही अपने को समर्पित करेगी, अन्य किसी का वरण कभी नही करेगी। शिशुपाल और रुक्म के पास सैन्य–बल था, ताकत के बल पर वे अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए कृत सकल्प थे। रुक्मिणी असहाय थी। परन्तु

उसके पास दृढ सकल्प बल था। उसके आधार पर उसने कृष्ण के पास सन्देश पहुँचाया और अपने मनोरथ को व्यक्त किया। एक स्त्री पर होने वाले इस अन्याय के प्रतिकार के लिए कृष्ण ने जो कुछ किया और जिस रीति से उन्होने रुक्मिणी के मनोरथ को पूर्ण किया, वह सर्वविदित है।

रुक्मिणी अद्वितीय लावण्यवती सुन्दरी थी। वह महारानी सत्यभामा से भी अधिक सुन्दर थी। यदि ऐसा न होता तो नारद जैसे ऋषि सत्यभामा के अभिमान को दूर करने के लिए रुक्मिणी को आधार न बनाते। ऐसी लावण्यवती रुक्मिणी, जो उन्हे बहुत कठिनाइयो का सामना करने के पश्चात प्राप्त हुई थी, जब ससार से उद्विग्न होकर सयम के मार्ग पर चलने को उद्यत हुई तब उसे सहर्ष अनुमति प्रदान करके कृष्ण महाराज ने यह सिद्ध कर दिया कि भोगो की आसक्ति के कारण उन्होंने रुक्मिणी का वरण नहीं किया था अपितु कर्तव्य पालन की दृष्टि से – नारी पर होने वाले अन्याय के प्रतिकार के लिए – रुक्मिणी का वरण किया था।

द्वारिका के विनाश का कारण और कृष्ण की उद्घोषणा :

का निमित्त जानकर इस प्रश्न के उत्तर मे फरमाया कि – यादवी राजकुमार मदिरा के नशे मे उन्मत्त होकर द्वैपामन ऋषि को परेशान करेगे, जिससे क्रुद्ध होकर वह द्वारिका के विनाश का निदान (नियाण) करेगा। उस निदान के कारण वह देव बनकर द्वारिका का विनाश करेगा।

द्वारिका के विनाश का कारण जानकर कृष्ण को मोह या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। पदार्थों की परिणमनशीलता और क्षणभगुरता को वे समझते थे। वे क्षायिक सम्यक्त्वी थे। सम्यक्त्व तभी प्राप्त होता है जब मोह की जड टूटती है। मोह के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से ही सम्यक्त्व का आविर्भाव होता है। कृष्ण वासुदेव क्षायक समकित के स्वामी थे। वे जगत् के पदार्थों की नश्वरता को हृदयगम कर चुके थे। अतएव उन्हे द्वारिका के विनाश के वृत्तान्त को जानकर खेद नही हुआ। उन्होने उसे आत्मकल्याण के अवसर के रूप मे लिया। उस प्रसग पर गहराई से विचार करते हुए उन्होने जनता के नायक के रूप मे अपने कर्तव्य का निर्धारण किया। उनकी विचारधारा जनता के कल्याण की ओर मुडी। वे सोचने लगे – "मैने जगत् के स्वरूप को समझा है परन्तु सर्वसाधारण जनता इस तथ्य को गहराई से नही समझती है त ८व जनता को सचेत और सावधान करना मेरा कर्तव्य है। मैं द्वारिका का आधिपत्य लेकर चल रहा हूँ। अतएव जनता को जागृत करना और इस वृत्तान्त की सूचना देना मेरा कर्तव्य है।

किसी भी देश का शासक जब अपने देश पर आने वाले खतरे को जान लेता है तो वही अपनी जनता को समय से पूर्व ही

सावधान कर देता है। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान का सघर्ष जब छिडा
ब सरकार की ओर से ऐसा यान्त्रिक प्रबन्ध किया गया था
जेससे शत्रु के विमानो की गतिविधिया ज्ञात हो जाती थीं और
नता को समय से पूर्व उसकी सूचना दे दी जाती थी ताकि
नता सावधानी बरत सके और सभावित खतरे से बचने का
यास कर सके। जब सामान्य शासक भी इस कर्तव्य का निर्वाह
रता है तो त्रिखण्डाधिपति और क्षायक सम्यक्त्व के स्वामी कृष्ण
सुदेव अपने कर्तव्य के पालन मे पीछे कैसे रह सकते है ? उन्होने
पनी जनता को द्वारिका पर आने वाली आपत्ति और मडराने
ले सकट की सूचना देने हेतु तथा इस सकट के दौरान अपने
र्व्य का बोध देने हेतु इस प्रकार की उद्घोषणा करवाई –

'प्रिय द्वारिकावासियो ! आपके अपार स्नेह और विश्वास
आधार पर मै द्वारिका के शासन–तत्र का सचालन कर रहा हू।
भरोसे आप सब निश्चिन्त हैं। मुझे आप अपने हितचिन्तक के
मे मानकर चल रहे है और समझ रहे है कि मेरे रहते आप
क्षित है। परन्तु मैं द्वारिका पर आने वाले सकट की पूर्व–सूचना
को दे रहा हू। भगवान् अरिष्टनेमि ने मेरे प्रश्न के उत्तर मे
माया है कि जिस द्वारिका के सौन्दर्य और वैभव पर हम सबको
व है वह सदा स्थिर रहने वाली नही है और उसका विनाश
ट भविष्य मे ही होने वाला है। अतएव जनता के नायक के
– शासक के नाते–मेरा यह कर्तव्य है कि मैं जनता को आसन्न
ट की सूचना दू और सकटकाल मे विचलित न होते हुए अपने
व्य के पालन मे विशेष सावधानी रखने हेतु प्रेरणा प्रदान करू।'

का निमित्त जानकर इस प्रश्न के उत्तर मे फरमाया कि – यादवी राजकुमार मदिरा के नशे मे उन्मत्त होकर द्वैपामन ऋषि को परेशान करेगे, जिससे क्रुद्ध होकर वह द्वारिका के विनाश का निदान (नियाण) करेगा। उस निदान के कारण वह देव बनकर द्वारिका का विनाश करेगा।

द्वारिका के विनाश का कारण जानकर कृष्ण को मोह या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। पदार्थों की परिणमनशीलता और क्षणभगुरता को वे समझते थे। वे क्षायिक सम्यक्त्वी थे। सम्यक्त्व तभी प्राप्त होता है जब मोह की जड टूटती है। मोह के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से ही सम्यक्त्व का आविर्भाव होता है। कृष्ण वासुदेव क्षायक समकित' के स्वामी थे। वे जगत् के पदार्थों की नश्वरता को हृदयगम कर चुके थे। अतएव उन्हे द्वारिका के विनाश के वृत्तान्त को जानकर खेद नही हुआ। उन्होने उसे आत्मकल्याण के अवसर के रूप मे लिया। उस प्रसग पर गहराई से विचार करते हुए उन्होने जनता के नायक के रूप मे अपने कर्तव्य का निर्धारण किया। उनकी विचारधारा जनता के कल्याण की ओर मुडी। वे सोचने लगे – "मैने जगत् के स्वरूप को समझा है परन्तु सर्वसाधारण जनता इस तथ्य को गहराई से नही समझती है, अतएव जनता को सचेत और सावधान करना मेरा कर्तव्य है। मै द्वारिका का आधिपत्य लेकर चल रहा हूँ। अतएव जनता को जागृत करना और इस वृत्तान्त की सूचना देना मेरा कर्तव्य है।

किसी भी देश का शासक जब अपने देश पर आने वाले को जान लेता है तो वही अपनी जनता को समय से पूर्व ही

सावधान कर देता है। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान का सघर्ष जब छिडा तब सरकार की ओर से ऐसा यात्रिक प्रबन्ध किया गया था जिससे शत्रु के विमानो की गतिविधिया ज्ञात हो जाती थीं और जनता को समय से पूर्व उसकी सूचना दे दी जाती थी ताकि जनता सावधानी बरत सके और सभावित खतरे से बचने का प्रयास कर सके। जब सामान्य शासक भी इस कर्तव्य का निर्वाह करता है तो त्रिखण्डाधिपति और क्षायक सम्यक्त्व के स्वामी कृष्ण वासुदेव अपने कर्तव्य के पालन मे पीछे कैसे रह सकते है ? उन्होने अपनी जनता को द्वारिका पर आने वाली आपत्ति और मडराने वाले सकट की सूचना देने हेतु तथा इस सकट के दौरान अपने कर्तव्य का बोध देने हेतु इस प्रकार की उद्घोषणा करवाई –

'प्रिय द्वारिकावासियो । आपके अपार स्नेह और विश्वास के आधार पर मै द्वारिका के शासन–तत्र का सचालन कर रहा हू। मेरे भरोसे आप सब निश्चिन्त है। मुझे आप अपने हितचिन्तक के रूप मे मानकर चल रहे है और समझ रहे है कि मेरे रहते आप सुरक्षित है। परन्तु मैं द्वारिका पर आने वाले सकट की पूर्व–सूचना आपको दे रहा हू। भगवान् अरिष्टनेमि ने मेरे प्रश्न के उत्तर मे फ़रमाया है कि जिस द्वारिका के सौन्दर्य और वैभव पर हम सबको गौरव है वह सदा स्थिर रहने वाली नही है और उसका विनाश निकट भविष्य मे ही होने वाला है। अतएव जनता के नायक के नाते– शासक के नाते–मेरा यह कर्तव्य है कि मैं जनता को आसन्न सकट की सूचना दू और सकटकाल मे विचलित न होते हुए अपने कर्तव्य के पालन मे विशेष सावधानी रखने हेतु प्रेरणा प्रदान करू।'

'प्रिय नागरिको ! आपने द्वारिका मे रहकर भौतिक समृद्धि और बाह्य ऐश्वर्य तो पर्याप्त अर्जित किये हैं परन्तु यह शाश्वत नहीं है। यह सब विनश्वर है और नष्ट होने वाला है। यह भव्य और दिव्य द्वारिका नगरी भी अग्नि की लपटो मे भस्मीभूत हो जाने वाली है एतएव समय रहते हुए आशाश्वत से मोह हटाकर शाश्वत तत्त्व की आराधना मे जुट जाना हितावह है। भौतिक सम्पदा नष्ट हो जाने वाली है एतएव आत्मिक सम्पदा को जुटाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

'धर्म की पूजी कमा ले जीवा ! जीवन बन जायगा
जीवन पट पर रग है कब से, सयम रग चढा ले,
चढा ले जीवा, जीवन बन जायगा।'

"भव्य प्राणियो ! धर्म की पूजी कमाओ और जीवन पट पर सयम का रग चढाओ। ऐसा करने से ही जीवन सफल हो सकेगा। सकटकाल सामने खडा है। यदि भौतिक मद–मस्ती मे या सासारिक मोह दशा मे जकडे रहे और वैसी अवस्था मे अगले जन्म की आयु का बन्ध पड गया तो फिर चौरासी के चक्कर मे भटकना पडेगा, कही ठौर ठिकाना नही लगेगा। अतएव मै तीन खण्ड के स्वामी और आपके हितैषी के नाते सब तरुणो और तरुणियो को, पुरुषो और महिलाओ को प्रौढ और वृद्धो को सूचित करता हू कि वे सकट को समझे और मोह के बन्धनो को शिथिल करके आध्यात्मिक साधना के लिए कटिबद्ध हो जाए। प्रभु अरिष्टनेमि की पावन और तारक निश्रा मे आकर जीवन को सफल और धन्य

"प्रिय नागरिको! सासारिक उत्तरदायित्व के कारण यदि कोई व्यक्ति या व्यक्तियो का समुदाय सयम पथ पर चलने का इच्छुक होने पर भी रुकावट का अनुभव करता हो तो उसे मैं स्पष्ट आश्वासन देना चाहता हू कि उनके योगक्षेम की व्यवस्था मै करूगा। यदि कोई तरुण सयम की साधना के लिए ससार के बन्धनो से निकलना चाहते हैं किन्तु उनके सामने यदि वृद्ध माता–पिता की सेवा की समस्या है तो मै उनके माता–पिता की सेवा करने का उत्तरदायित्व लेता हू। कदाचित् कोई व्यक्ति या परिवार आर्थिक अभाव की स्थिति मे चल रहे हो और उनके सामने परिवार के भरण पोषण का प्रश्न होतो उसकी जवाबदारी भी मै अपने ऊपर लेता हू। उनके जीवन–निर्वाह हेतु जो भी सामग्री अपेक्षित है उसकी पूर्ति मै करूगा। सबके योग–क्षेम की जवाबदारी मेरी है। इस विषय मे जरा भी विचार न करते हुए वे सयम के मार्ग मे अग्रसर हो सकते है। मै इसके लिए सबको अनुमति प्रदान करता हू।"

"यह अनुमति केवल जनता के लिए ही नहीं है, अपितु मेरे परिवार के लिए भी है। राजकीय परिवार का कोई भी व्यक्ति चाहे राजकुमार हो, राजकुमारिया हो, महारानिया या पटरानी हो जो सयम के मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो, उसे मैं अपनी अनुमति प्रदान करता हू। जीवन की सफलता का यही मार्ग है। जनता के नायक और शासक के नाते मै यह पूर्व–सूचना प्रसारित करता हूँ।"

उक्त अभिप्राय की उद्घोषणा कृष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी मे करवाई। बन्धुओ ! इस घोषणा से कृष्ण वासुदेव का कितना महान् व्यक्तित्व और कृतित्व झलकता है ! इस उद्घोषणा के पद–पद से उनका सम्यक्दर्शन मुखरित हो रहा है। उन्होने जड और चेतन का, शाश्वत और अशाश्वत का अन्तर्दृष्टि और बहिर्दृष्टि का अन्तर समझा था। ऐश्वर्य और वैभव मे रहते हुए भी वे उसमे रचे–पचे नही थे ! जिस महारानी रुक्मिणी के लिए उन्हें भीषण सघर्ष करना पडा, उसके प्रति मोह की स्थिति को समाप्त करना आसान काम नही है।

साधारण तौर पर देखा जाता है कि चाहे घर मे अभाव की स्थिति हो, दो समय भोजन भी पूरा न मिलता हो, घर मे स्त्री कुरूपा और कर्कशा हो – रात दिन घर मे महाभारत छिडा रहता हो तदपि ससार से विरक्ति नही होती ! घर से और घरवाली से ममता नही छूटती ! द्वारिकाधीश कृष्ण को देखिये जो अपार ऐश्वर्य के स्वामी थे और जिनके अन्त पुर मे रुक्मिणी, सत्यभामा जैसी अनिन्द्य सुन्दरिया थी, वे उनसे अपना ममत्व हटा कर उन्हे सयम की साधना हेतु अनुमति प्रदान करते है ! कैसा अद्भुत था वह युग !

क्या दीक्षा का सौदा हो सकता है ?

आज सरीखा युग होता तो शायद अपरिपक्क बुद्धि के सोचते कि त्रिखडाधिपति कृष्ण वासदेव लोगो को खरीद

कर साधु–साध्वी बनाना चाहते थे । क्या दीक्षा भी सौदे की वस्तु है, जो ली–बेची जा सकती है ? क्या सयम खरीदा जा सकता है ? यह बुद्धि का दिवालियापन है । ज्ञान–दर्शन–चारित्र अनमोल हैं। इनका मोल नहीं हो सकता। हजारो द्वारिकाए देकर भी त्यागी के त्याग का मोल नही चुकाया जा सकता । आपने सुना ही है कि मगध का सम्राट् श्रेणिक, पूनिया श्रावक की एक सामायिक का मूल्य देने मे असमर्थ रहा। उसकी 52 डूगरियो की सम्पत्ति तो उसकी दलाली मे ही चली जाती। मगध का सम्राट एक सामायिक की कीमत भी न दे पाया तो जो जीवन भर की सामायिक अगीकार कर रहा है उसके त्याग का मोल करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? जो मोह के नशे मे दीवाना बन रहा है, वह इस तथ्य को नहीं समझ सकता है । कृष्ण वासुदेव क्षायिक सम्यक्त्वी थे, वे दर्शन–मोह पर विजय प्राप्त कर चुके थे। अत सयम और साधना के महत्त्व को वे भलीभाति हृदयगम किये हुए थे। यही कारण है कि वे अपनी उक्त उद्‌घोषणा के माध्यम से द्वारिकावासियो को सयम के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान कर रहे है ।

बन्धुओ ! कृष्ण ने अपनी घोषणा मे ऐसी कोई बात नहीं कही थी, जिससे खरीद कर साधु–साध्वी बनाने की चर्चा खडी की जा सके। उन्होने इतना ही कहा कि यदि कोई सयम अगीकार करने की भावना तो रखता हो परन्तु अर्थाभाव से या और किन्ही कारणो से उसको बाधाओ का सामना करना पड रहा हो तो मै उन बाधाओ का निवारण कर सकता हू। वह व्यक्ति निश्चिन्त और

कृष्ण वासुदेव ने सोचा कि यह भौतिक वैभव रहने वाला नहीं है द्वारिका भी नष्ट होने वाली है तो मेरा यह वैभव यदि धर्म की साधना का साधन बने तो इससे बढकर इसका और सदुपयोग क्या हो सकता है ? मुझे धर्म की दलाली का लाभ लेना ही चाहिए। इस प्रकार के उदात्त अध्यवसायो से उन्होने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। कितना महान् है कृष्ण का यह कृतित्व ओर व्यक्तित्व। साधारण व्यक्ति अपनी सामान्य बुद्धि से महापुरुषो के जीवन को सही रूप मे नही समझ पाते। कृष्ण के असाधारण और बहुरगी जीवन को समझने की क्षमता सर्व-साधारण मे नही है। पर्याप्त क्षमता वाला व्यक्ति ही उनके जीवन की सफलताओ को आक सकता है।

त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव की उक्त घोषणा सुनने के

पश्चात् जिन भव्य आत्माओ की भवस्थिति पक चुकी थी वे प्रभु अरिष्टनेमि के समीप सयम अगीकार करने हेतु तत्पर बनी। सम्बन्धित–पारिवारिक जनो की अनुमति लेकर वे प्रभु के चरण–शरण मे आकर प्रव्रजित हो गये।

कृष्ण की महारानियो ने भी प्रव्रज्या अगीकार करने हेतु अनुमति मागी तो कृष्ण ने उन्हे सहर्ष अनुमति प्रदान की। यदि कृष्ण की मोहदशा प्रबल होती तो वे अपनी महारानियो को सयम अगीकार करने की अनुमति नहीं देते।

भाइयो! कल्पना करिये उस भव्य दृश्य की, जब कृष्ण की पटरानी और अन्य महारानिया साध्वी–वेश को धारण करके प्रभु की सेवा मे उपस्थित हुई होगी! कितना मर्मस्पर्शी हुआ होगा वह दृश्य जब हजारो की सख्या मे राजकुमार और राजकुमारिया, सेठ और सेठानिया, युवक और युवतिया, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी के रूप मे प्रभु अरिष्टनेमि के पावन पद–पद्मो की शरण मे पहुचे होगे! आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का वह दृश्य कितना भव्य और रम्य रहा होगा!

मद्यपान का निषेध

त्रिखण्डाधिपति कृष्ण ने इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन की दलाली का लाभ तो लिया ही साथ ही नैतिकता की दृष्टि से भी द्वारिका की जनता को सावधानी रखने के सकेत दिये। उन्होने कहा कि जिन लोगो मे सयम पथ पर चलने की क्षमता न हो, वे कम से कम दुर्व्यसनो का त्याग तो अवश्य करे। खास करके

मदिरा का पान न करे। यह मदिरा आपत्ति का कारण बन सकती है। यादवीय राजकुमारो को विशेष रूप से सावधान करते हुए उन्होने कहा कि अब तक चाहे जिस स्वच्छन्द वृत्ति के साथ रहे हों, परन्तु अब अपने आप पर नियत्रण और अनुशासन रखना होगा। यदि द्वारिका की और अपने आपकी सुरक्षा चाहते हो तो मदिरा और अन्य व्यसनो का परित्याग करना आवश्यक है। जब तक यह नियत्रण और अनुशासन रहेगा, तब तक ही द्वारिका की और हम सब की सुरक्षा है। अतएव इस विषय मे पूरी जागरुकता और सतर्कता रखी जानी चाहिए।

कृष्ण वासुदेव ने सावधानी की दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य मे मद्य–निषध की घोषणा करवाई और जितना भी मदिरा का सग्रह जहा कही भी था, उसे द्वारिका से बहुत दूर जगल मे पहाडी पर फिकवा दिया।

समय बडा विचित्र होता है। भवितव्यता होकर ही रहती है। सतत सावधानी रखने के बावजूद भी होनहार को कोई टाल नही सकता। द्वारिका के विषय मे भी वही हुआ।

भावी भाव की प्रबलता के वश होकर कतिपय यादवी राजकुमार जगल मे गये। स्वेच्छानुसार क्रीडा करते हुए उन्हे प्यास लगी। समीप ही झरना बह रहा था। उसका पानी उन्होने पीया। उस झरने के पानी मे पहाडी पर डाली गई मदिरा का रस मिल चुका था। उस झरने के पानी को पीने से यादवी राजकुमारो पर दिरा का असर होने लगा। वे मदिरा के नशे मे चूर हो गये।

वहीं जगल मे द्वैपायन ऋषि साधना मे लीन थे। नशे मे उन्मत्त होकर वे राजकुमार उन ऋषि को परेशान करने लगे। तरह–तरह के अनुचित शब्दो और व्यग्यो से तथा कायिक चेष्टाओ से वे ऋषि का तिरस्कार करने लगे। ऋषि काफी समय तक शान्त रहे। राजकुमारो ने अधिक छेडखानी शुरू की। अन्तत ऋषि का धैर्य समाप्त हो गया। वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होने क्रोध के आवेश मे निदान कर लिया कि मेरी करणी (तपस्या) का फल इन राजकुमारो और इनकी द्वारिका नगरी के विनाश के रूप मे हो। उस शरीर को छोडकर वह ऋषि अग्निकुमार देव हुए और उन्होने निदान के फलस्वरूप द्वारिका नगरी को अग्नि की लपटो से भस्मीभूत कर दिया।

बन्धुओ। मदिरा के कारण देवनिर्मित द्वारिका नगरी आग की ज्वालाओ से जलकर राख हो गई। कितना घातक परिणाम होता है मदिरा–पान का।

बन्धुओ। यह कहते हुए बडा दु ख होता है कि आज के सभ्य कहे जाने वाले इस युग मे न केवल निम्न वर्ग मे ही अपितु कुलीन कहे जाने वाले वर्ग मे भी मदिरापान का प्रचलन बडे पैमाने पर हो चला है। पहले तो निम्न समझी जाने वाली जातियो मे ही मदिरापान का प्रचलन था परन्तु अब तो इसने फैशन का रूप ले लिया है। समृद्ध और आधुनिकता की दृष्टि से प्रगतिशील समझे जाने वाले घरो मे मदिरा–पान का प्रवेश हो चुका है। स्कूल, कॉलेज और क्लबो मे मदिरा के दौर चलते है। उगती उम्र के

नवयुवक और नवयुवतिया तथाकथित प्रगति और आधुनिकता की हवा मे बहकर इस दुर्व्यसन के शिकर बन जाते है। यह कितनी घातक प्रवृत्ति है ?

सरकारी आकडे यह बता रहे है कि मदिरा के द्वारा होने वाली राजकीय आय प्रति वर्ष कई गुणा अधिक बढ रही है। यह इस बात का द्योतक है कि मदिरा–पान की प्रवृत्ति देश मे बढ रही है जो अत्यन्त घातक और हानिप्रद है।

भाइयो। यादवी राजकुमारो ने मदिरा–पान किया तो द्वारिका नगरी जलकर राख हो गई, उसी तरह मदिरा–पान की आदत कई परिवारो की सुख–शान्ति और समृद्धि मे आग लगा देती है। इस आदत के कारण कई परिवार बर्बाद हो गये है। उनकी सम्पत्ति मदिरा के ठेकेदारो की जेब मे चली जाती है। मदिरा के नशे मे वे चेतना भी गवा देते है और सम्पत्ति से भी हाथ धो बैठते है। बाल–बच्चे स्त्री आदि भयकर मुसीबत मे फस जाते है। परिवार बर्बाद हो जाता है, नतीजा कुछ हासिल नही होता। एतएव मदिरा–पान की बुरी आदत से छुटकारा पाने से ही परिवार की सुख – शान्ति बनी रह सकती है। मैं समझता हू कि इस सभा मे तो कोई व्यक्ति इस आदत का शिकार नही होगा। परन्तु यदि कोई हो तो उसे आज और अभी ही मदिरापान के त्याग की प्रतिज्ञा (प्रत्याख्यान) कर लेनी चाहिए। 'जब जागा तभी प्रभात' के अनुसार अपनी आदत का परिमार्जन कर लेना चाहिए। यदि किसी मे सबके सामने प्रतिज्ञा लेने का सामर्थ्य न हो तो एकान्त मे आकर

प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। जीवन मे सुख–शान्ति का सचार और परिवार मे समृद्धि तभी तक सम्भव है जब तक मदिरा--पान की आदत न लगी हो। यह आदत एकबार पड जाती है तो वह घर और परिवार को बर्बाद किये बिना नही रहती। एतएव बुद्धिमानो और विवेक सम्पन्न व्यक्तियो का कर्तव्य है कि वे मद्यपान आदि दुर्व्यसनो से बच कर नैतिकतापूर्ण जीवन बितावे।

मदिरा-निर्माण की घृणित प्रक्रिया

मदिरा–पान की आदत वाले भाई भी यदि मदिरा के बनने की प्रक्रिया पर ध्यान दे तो सम्भव है कि उन्हे भी स्वयमेव मदिरा से घृणा हो जाय। मदिरा बनाने वाले महुवो को सडाते हैं, उनमे लम्बे–लम्बे कीडे पड जाते है। उन कीडो वाले महुओ को बर्तन मे डालकर आग पर चढा कर उबालते है जिससे कीडो का रस भी उसमे मिल जाता है। चाहे आज के वैज्ञानिक युग मे शराब तैयार करने की कोई नई प्रक्रिया हो परन्तु यह भी निर्माणाधीन दशा मे घृणित और दुर्गन्धपूर्ण होती है। तैयार हो जाने के बाद आकर्षक बोतलो मे विविध नामो के साथ भले ही वह प्रस्तुत की जाती हो परन्तु वह अत्यन्त घातक और हानिप्रद है। अतएव मदिरा–पान से प्रत्येक सद्–गृहस्थ को अवश्यमेव बचना चाहिए।

जिस प्रकार यह मदिरा गृहस्थ जीवन को झकझोर देती है, इसी प्रकार मोह की मदिरा आत्मा को झकझोर देती है जिससे आत्मा चतुर्गति मे भटकता रहता है। अतएव मोह को हटाकर अपने जीवन रूपी कपडे को धर्म के रग मे रग लेना चाहिए। सयम के रग मे रगने से जीवन की सार्थकता है। विचक्षण और प्राज्ञ

द्वारिका के निवासियो ने प्रभु के चरणो मे सयम अगीकार कर अपने जीवन को कृतार्थ बनाया। इसी तरह आप भी मोह की प्रबलता को हटाकर सयम की साधना की दिशा मे आगे बढे। यदि इतना सामर्थ्य न हो तो गृहस्थ अवस्था मे भी मर्यादित और त्याग–प्रत्याख्यान मय जीवन बितावे। यदि यह भी सम्भव न हो तो कम से कम धर्म–दलाली का लाभ तो आप ले ही सकते है। जो व्यक्ति सहज रूप से त्याग मार्ग के पथिक बनने को तैयार हो, उन्हे आप प्रोत्साहित करे या न करे परन्तु उनके मार्ग मे बाधा डालने की कोशिश तो न करे। जो मोह से बचने के लिए तैयार हो रहे है, उन्हे मोह मे डालने का यत्न न करे अन्यथा आप स्वय महा मोहनीय कर्म के बन्धन से बध जावेगे।

भाइयो । आप अपने जीवन का अनुसन्धान करे। अपने जीवन के अन्दर झाक कर देखे। जीवन मे व्याप्त मोह–मदिरा के प्रभाव से अपने को मुक्त करे। आलोचना द्वारा जीवन का शुद्धिकरण करे। यह पर्युषण पर्व का सुन्दर अवसर है, इस अवसर पर सुविधानाथ भगवान् को विधिवत वन्दन करे। उन्होने मोहनीय कर्म और अन्य कर्मों का क्षय करके अनन्त ज्ञान–दर्शन–सुख और शक्ति प्राप्त की, इसी तरह आप और हम भी उनका अनुसरण कर जीवन को मगलमय बना सकते है।

देशनोक
4–9–75

****

चरित्र का मूल्यांकन

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये, हो वदत पाप पुलाय।
अष्टकर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
सुध समकित चारित्र नो हो, परम क्षायक गुण लीन।।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो।।

यह प्रभु सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रार्थना जीवन का महत्त्वपूर्ण अग और प्रसग है, क्योकि प्रार्थना के माध्यम से जीवन का वेग सही दिशा की ओर प्रवाहित होता है। जीवन विश्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। बल्कि यह कहना चाहिए कि विश्व की समस्त प्रवृत्तियो का सचालन करने वाला तत्त्व, जीवन ही है। जीवन जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही वह रहस्यो से परिपूर्ण भी है। विश्व के विद्वानो, विचारको और दार्शनिको के सामने यह प्रश्न चिरन्तन काल से खडा है कि 'जीवन क्या है ?' क्या यह केवल भौतिक पिण्ड है जो जड भूतो से उत्पन्न होता है और जड–भूतो मे विलीन हो जाता है ? अथवा यह एक शाश्वत चेतन तत्त्व है, जो सदा से है और सदा बना रहने वाला है ?

सर्वज्ञ–सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा का कथन है कि जीवन

शाश्वत और सनातन तत्त्व है। अनन्त अतीत काल मे भी कोई ऐसा समय नहीं था जब जीवन का अस्तित्व न रहा हो और अनन्त भविष्य काल मे भी ऐसा कोई समय नही होगा जिसमे जीवन का अस्तित्व नही रहेगा। वर्तमान मे जीवन का प्रवाह गतिमान है ही। इस तरह जीवन त्रिकालवर्त्ती शाश्वत सनातन तत्त्व है। वह अनायास प्रकट हो जाने वाला या अनायास ही विलीन हो जाने वाले नही है। इस दृष्टि से हमारा यह दृश्यमान जीवन केवल इसी जन्म का परिणाम नहीं है अपितु इसका अस्तित्व अनन्त अतीतकाल मे था और अनन्त भविष्यकाल मे भी रहेगा। आचाराग सूत्र मे तीर्थंकर प्रभु फरमाते है –

सुय मे आउस ! तेण भगवया एवमक्खाय–इहमेगेसि णो सण्णा हवइ 'पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओऽहमसि, दाहिणाओ दिसाओ वा आगओ अहमसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, उत्तरिल्लाओ वा दिसाओ वा आगओ अहमसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ विदिसाओ वा आगओ अहमसि। केऽह आसी को वा इह चुओ पेच्चे भविस्सामि।'

– आचाराग 1 श्रुत 1 अ 1 उद्दे

"हे आयुष्मन् जम्बू ! भगवान् ने इस प्रकार फरमाया है कि इस ससार मे कतिपय व्यक्तियो को यह ज्ञान नही होता कि – मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से आया हूँ, उत्तर दिशा से आया हूँ अथवा किसी भी दिशा–विदिशा से आया हूँ। मै कौन था ? और यहा से चल कर परलोक मे क्या होऊगा।"

तीर्थंकर परमात्मा के इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारा वर्तमान जीवन पूर्ववर्ती जीवन का परिणाम है। जीवन की वर्तमान स्थिति पूर्व जीवन के आधार से बनी है और इस जीवन के आधार से हमारे अगले जीवन की स्थिति बनने वाली है। जीवन का प्रवाह कई जन्मो से चला आ रहा है और जन्म–जन्मान्तर तक चलता रहेगा जब तक कि सिद्धावस्था प्राप्त न हो जाय। वैसे तो सिद्धावस्था मे भी विशुद्ध जीवन होता ही है।

सिद्धावस्था मे पाया जाने वाला विशुद्ध निर्मल जीवन हम सब का लक्ष्य है। हमारे जीवन की समस्त प्रवृत्तियो का लक्ष्य उस विशुद्ध जीवन को प्राप्त करना ही होना चाहिए। प्रार्थना के माध्यम से उस विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने की हमारी अभिलाषा को हम व्यक्त करते है। हम यह मान कर चलते है कि यह शरीर ही सब कुछ नहीं है। इससे परे एक विराट एव वास्तविक जीवन है, जिसे हमे उपलब्ध करना है।

अनेक व्यक्ति इस लक्ष्य को ओझल किये हुए है। या यो कहना चाहिए कि वे लक्ष्य–भ्रष्ट हो गये है। वे जीवन को सही दृष्टिकोण से नहीं देख पा रहे हैं।[1] जीवन का स्वरूप उन्होने कुछ और ही समझ रखा है। शारीरिक और भौतिक सुख–सुविधाओ को प्राप्त करना ही उन्होने जीवन का लक्ष्य मान रखा है। निस्सदेह शरीर और उसको टिकाये रखने के लिए अन्न, जल आदि भौतिक पदार्थ भी अपना महत्त्व रखते है। मानव जीवन की ये बुनियादी

1– पिब खाद च जात शोभने। यदतीत वरगात्रि तन्न न ते।
नहि भिरु। गत निवर्तते समुदाय मात्रमिदम् कलेवरम्।।
— षड्दर्शन कारिका 93

आवश्यकताए है। परन्तु इसी को जीवन का लक्ष्य मान लेना नितान्त भ्रमपूर्ण है।

आज मानव जीवन के सारभूत तत्त्वो को भुला कर इधर-उधर लक्ष्य–हीन बन कर भटक रहा है। भौतिक साधनो की उपलब्धि ही उसका एकमेव लक्ष्य बन गया है और इसके पीछे वह पागल की भाति भाग रहा है। इन्हे प्राप्त करने हेतु वह नीति, सदाचार और धर्म को भी दाव पर लगा देता है। जीवन के सारभूत तत्त्वो को खोकर भी वह अधिक से अधिक भौतिक साधन बटोरना चाहता है। **यह कितना बडा व्यामोह है ! कितना भारी भ्रम है ! जीवन की कैसी अद्‌भुत विडम्बना है कि मानव अपनी जीवन-नौका को हल्की रखने के बजाय धन-दौलत के असार-कंकर-पत्थरो को बटोर-बटोर कर भारी बना रहा है !!** दु ख है कि मानव ने जीवन के सही महत्त्व को नहीं समझा। जीवन का महत्त्व धन–दौलत की प्राप्ति से नहीं, **जीवन का महत्त्व सत्ता या अधिकारो को हस्तगत करने मे नहीं, जीवन का महत्त्व शारीरिक बल या सौन्दर्य से नहीं, जीवन का महत्त्व होता है सदाचार से, सद्‌व्यवहार से।**

मानव ने अपने जीवन का सही मूल्याकन नही किया है। 'सदाचार से मानव–जीवन की महत्ता है', इस तथ्य को उसने भुला दिया है। यही कारण है कि व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और विश्व मे विकृतिया फैल रही है, अशान्ति उभर रही है और चारो ओर उच्छृखलता का वातावरण बन रहा है। धार्मिक और नैतिक मर्यादाए लुप्त हो रही हे, कर्तव्य–भावना निकल चुकी है, सर्वत्र स्वार्थान्धता और लोलुपता का बोलबाला ह।

जीवन के सारभूत तत्त्व सदाचार की ओर न व्यक्ति ध्यान दे रहा है और न परिवार ही इस विषय मे सोच रहा है। समाज और राष्ट्र के कर्णधार भी इस विषय मे चिन्तन नहीं कर रहे है। परिणामस्वरूप व्यक्ति जर्जरित होता चला जा रहा है। पारिवारिक जीवन खोखला हो रहा है। सामाजिक जीवन विश्रृंखलित हो रहा है। राष्ट्रीय धरातल पर जाए तो राष्ट्रीय चरित्र का नाम निशान भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। विश्व की दृष्टि से अपेक्षित सदाचार का कहीं पता नहीं है। ऐसी परिस्थिति मे प्रत्येक सुज्ञ और विवेक–सम्पन्न व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इस विषय की ओर अपनी चिन्तन धारा को मोडे। यह सन्देहातीत तथ्य है कि जब–जब मानव ने सदाचार की अवहेलना की, उस पर विपत्ति के बादल मडराये है, विषमताए पनपी है, जीवन का धागा टूटा है, समाज उच्छृंखल बना है और राष्ट्र पर सकट गहराया है। अतएव यदि जीवन का सही मूल्याकन करना है, यदि नव निर्माण की शक्ति के साथ वर्तमान को स्वर्णिम आदर्शों पर टिकाना है और भविष्य को उज्ज्वलतर बनाना है तो जीवन मे सदाचार को अपनाना ही होगा। सदाचार को अपनाये बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र मे प्रगति नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत जीवन मे, पारिवारिक परिवेश मे, जाति या समाज–गत क्षेत्र मे, राष्ट्रीय परिधि मे और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे– सर्वत्र सदाचार और अनुशासन की आवश्यकता है।

आज की दृष्टि से सोचे या अतीत काल पर दृष्टिपात करे तो सदाचार और अनुशासन की महत्ता को और उसकी अनिवार्यता

को स्वीकार करना ही होगा। वर्तमान सदर्भो मे तो इनकी बहुत ही अधिक आवश्यकता है। पर्युषण पर्व के अवसर पर दिव्य महापुरुषो के चरित्रो को उनकी शुद्ध निष्ठा को और जीवन–निर्माण की कलाओ को श्रवण करने का प्रसग आता है, तब जीवन मे सच्चरित्रता कि दिव्य भावना प्रकट होती है और अनुभव होता है कि वस्तुत सदाचार–मय ही जीवन है। सदाचार–हीन मानव मशीन की तरह जीता है और मशीन की तरह समाप्त हो जाता है।

अर्जुन माली

राजगृही नगरी के शान्त वातावरण मे जो उथलपुथल हुई, शात परिवारो मे भी आग लगी, वह चरित्रहीनता का ही दुष्परिणाम था। यह अर्जुन माली की घटना से स्पष्ट हो जाता है। अर्जुन माली जाति से माली था किन्तु उसके जीवन मे नैतिकता थी और सदाचार व्याप्त था। उसका व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन सुखी, शात और नियमित था। आजीविका के निर्वाह हेतु वह नैतिकतापूर्ण श्रम का मार्ग अपना कर चल रहा था। अनैतिक आचरण द्वारा सुखोपभोग के साधन जुटाना, उसे पसन्द न था। उसकी भावना के अनुरूप ही उसकी धर्मपत्नी भी उसके कार्य मे सदा सहयोग प्रदान करती थी। वह कर्तव्य–परायण और पति के नैतिक कार्यों मे सहयोग देने वाली सुयोग्य गृहिणी थी। यही कारण हे कि उसका पारिवारिक जीवन एकदम शात और सुखी था।

पारिवारिक जीवन की शाति हेतु परिवार के सदस्यो में कर्तव्य और उत्तरदायित्वो का बोध होना आवश्यक है।

परन्तु प्राय देखा जाता है कि आधुनिक परिवारो मे घरेलू वातावरण अशात और कलुषित रहता है। छोटी–छोटी बातो को लेकर परिवार के सदस्य घर मे महाभारत खडा कर देते है। परिणाम–स्वरूप घर की शाति नष्ट हो जाती है, घर के टुकडे–टुकडे हो जाते हैं, पारिवारिक स्नेह की भावना टूक–टूक हो जाती है और घर का आगन कलह एव क्लेश का अड्डा बन जाता है। जो परिवार सुख–शाति का आगार और आधार होता है, वही कारागार के समान दुखदायी बन जाता है। इसका एक मात्र कारण है–परिवार के सदस्यो मे कर्तव्य भावना का अभाव। यदि परिवार के सदस्य अपने दायित्व को समझ कर पारिवारिक आचार सहिता और अनुशासन का पालन करते है तो निस्सदेह वह परिवार सुखी, समृद्ध और शात होता है। वहा विषमता का वातावरण व्याप्त नही होता है। उसकी आर्थिक अवस्था डावाडोल नहीं होती। पारिवारिक जीवन वहा टूटते नजर आते है, जहा परिवार के सदस्य अपनी जिम्मेदारियो को भुला कर एक ही व्यक्ति पर निर्भर हो जाते है। परिवार मे एक ही व्यक्ति कमावे और शेष व्यक्ति हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे–उपभोग मात्र करे तो उस परिवार की दशा विकृत और विषम हो जाती है।

मध्यमवर्गीय जनता इसलिए परेशान है कि उनके यहा कमाने वाला एक है और खाने वाले दस है। श्रमिक वर्ग मे यह स्थिति नहीं है। वहा परिवार के सब सदस्य कार्य करते है–कमाते है। आजीविका के साधन जुटाने मे परिवार के सब सदस्य सहयोगी बनते हैं। अतएव आर्थिक दृष्टि से मजदूर वर्ग प्रगति कर रहा है। मध्यम वर्ग दिन प्रतिदिन शिथिल पडता जा रहा है या यो

कहना चाहिए कि वह खोखला होता जा रहा है। वह बडी दयनीय दशा से गुजर रहा है। उसकी ओर किसी का ध्यान भी आकृष्ट नही हो रहा है।

अर्जुन माली का जीवन मध्यम वर्ग की भाति दयनीय नहीं था। उसके परिवार के सब सदस्य पारिवारिक समस्याओ को हल करने मे लगे हुए थे। वह प्रामाणिकता के साथ बगीचे का सरक्षण करता था, फल–फूलो के द्वारा आजीविका की स्थिति को सुदृढ करता था और नैतिक धरातल पर जीवन को सुव्यवस्थित रख रहा था। वह प्रतिदिन की तरह पुष्प चयन करने हेतु बगीचे मे पहुचा। उसकी धर्मपत्नी भी पतिदेव को सहयोग करती हुई पुष्पो के चयन मे लगी हुई थी। एक तरफ नैतिकता के साथ श्रममय जीवन का यह क्रम चल रहा था।

उच्छृखल टोली

दूसरी तरफ उसी राजगृही नगरी मे कुछ उच्छृखल युवको की टोली उधम मचाने मे लगी हुई थी। उस टोली के युवक सदस्य ऐश–आराम ओर भौतिक सुख–सुविधाओ को ही जीवन का सर्वस्व माने हुए थे। इसी आधार पर वे जीवन को नापते और तोलते थे। इसके लिए उन्होने अपने व्यक्तिगत जीवन को खण्डित कर लिया था, नैतिकता के सारे बन्धनो को तोड डाला था, धार्मिकता तो उनके लिए अभिशाप रूप थी, सामाजिक चारित्र को वे समझते ही नही थे ओर राष्ट्रीय चारित्र का तो नामोनिशान भी नहीं था। वे स्वच्छन्द वृत्ति के युवक इस नास्तिक विचारधारा को

लेकर चल रहे थे कि –

यावज्जीवेत् सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ।।

जब तक जीना है आराम से जीओ। ऋण लेकर भी घृतपान करो। जब शरीर भस्मीभूत हो जाता है तो पुन उसका आगमन कैसे और कहा से ? दुर्लभ शरीर प्राप्त है अतएव खूब–जीभर कर खाओ–पीओ, ऐश आराम करो। धर्म–कर्म, नीति–रीति, आचार–विचार और विधिनिषेध की बाते सब थोथी है। धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मर्यादाए या आचार–सहिताए खोखली हैं। यह दृष्टिकोण कितना अपूर्ण और भ्रमपूर्ण है ? इस प्रकार की भावना अत्यन्त घातक और सर्वतोमुखी विनाश करने वाली है। यह भावना व्यक्ति के जीवन को नष्ट करती है, परिवार को बर्बाद करती है, समाज को कलकित करती है, राष्ट्र का अध पतन करती है और विश्व मे सघर्ष पैदा करती है।

आध्यात्मिकता की ओर झुकाव

विश्व मे वैज्ञानिक क्षेत्र मे बहुत प्रगति हुई है। विज्ञान ने भौतिक दृष्टि से बहुत विकास किया है। नित्य नये अनुसन्धानो ने विश्व को चमत्कृत किया है। निस्सदेह भौतिक दृष्टिकोण से विज्ञान बहुत आगे बढ चुका है। परन्तु इन अनुसधानो का लक्ष्य भौतिक मात्र होने के कारण दुनिया के आगन मे जो सुख–शाति परिलक्षित होनी चाहिए थी, वह नही हो रही है। इतना ही नही, इन अनुसन्धानो के कारण विश्व मे अशान्ति का वातावरण
यह सब निराशाजनक स्थिति है, परन्तु इस बीच अब

किरण प्रस्फुटित हो रही है। भौतिकवादी वैज्ञानिक अब इस सत्य और तथ्य को समझने लगे है कि एकान्त भौतिकवादी दृष्टिकोण विश्व के लिए हितकारी नही है। उन्हे अब अनुभव होने लगा है कि भौतिकता ही सब कुछ नही है। जिन लोगो ने भौतिक साधनो के सहारे दुनिया मे रक्तक्राति का सूत्रपात किया और जो बहुत दूरी तक इस मार्ग पर चले, वे भी अब अनुभव करने लगे हैं कि दुनिया मे शान्ति स्थापित करने का यह सही मार्ग नही है। उनकी दृष्टि अव वाहर से हटकर अन्दर की ओर मुडती हुई दृष्टिगत होती है। वे समझने लगे है कि आध्यात्मिक धरातल पर ही सच्चरित्रता स्थायी रह सकती है । नैतिकता भी आध्यात्मिक आधार पर पुष्ट होती हे अन्यथा वह प्रदर्शन और व्यवसाय का रूप ले लेती है।

इस आध्यात्मिकता की ओर जिन वैज्ञानिको का ध्यान गया है, उनमे प्रमुख स्ट्रागबर्ग ने मानव जीवन के विषय मे महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है और अभौतिक तत्त्व की स्थापना प्रतिपादित की है। उन्होने अपनी 'यग युनिवर्स' नामक पुस्तक मे जो अभौतिकता का विवेचन प्रस्तुत किया है, वह दूसरे विश्वयुद्ध के वाद का क्रान्तिकारी विवेचन माना जाता है। उसकी भूमिका लिखी है, डा आइन्सटाइन ने। वेज्ञानिक अनुसधान की सभी शोध–सस्थाओ ने उसका हृदय से स्वागत किया हे। वह अभोतिक तत्त्व अध्यात्म की ओर सकेत कर रहा हे।

हमार यहा की कुछ विचित्र ही स्थिति है। पश्चिम के लोग भातिकता से ऊव कर, त्रस्त होकर, परेशान होकर अन्यत्र शाति

की खोज कर रहे है, वहा भारतीय जनता का मानस भौतिकता की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहा है। यह भारतीय जनता के लिए लज्जा का विषय होना चाहिए कि पाश्चात्य देश जिसे उतार कर फेक रहे है, उसे भारतीय अपना श्रृगार समझ रहे है। यूरोप, अमेरिका व रूस के लोग भौतिकता से ऊब चुके है और वे अभौतिक तत्त्व की प्राप्ति के प्रति उत्सुकता प्रकट कर रहे है, वहा भारतीय जनता विरासत मे प्राप्त विभूति अध्यात्म को भुला कर भौतिकता की ओर कदम बढा रही है।

भारत भूमि का तो यह सौभाग्य रहा है कि यहा आध्यात्मिक धरातल पर सच्चरित्रता के विषय मे समय–समय पर महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन मिलता रहा है। तीर्थंकरो, ऋषि–मुनियो और अन्य महापुरुषो ने समय–समय पर चरित्र के निर्माण पर बल दिया है। यही नही, स्वय अपने चरित्र द्वारा उन्होने दुनिया के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया है।

उल्टी गगा बह रही है

दुनिया के अन्य देशो का ध्यान भारत की आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो रहा है। वे भारत भूमि को आध्यात्मिक जीवन की जननी मानते हैं। यहा आकर वे जीवन मे शाति का अनुभव करने की अभिलाषा रखते है। आत्मिक साधना के प्रति उनमे जिज्ञासा और रुचि जागृत हो रही है। परन्तु दु ख का विषय है कि भारतीय जनता अपनी मोलिकता को नष्ट कर भौतिकता की भूलभुलैया मे

फसती चली जा रही है। आत्मिक वैभव के उत्तराधिकारी स्वय को दीन–हीन मान कर अमेरिका, रूस आदि विदेशो की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे है जबकि विदेशी जनता भारत की आध्यात्मिक सम्पदा से आकर्षित हो रही है। भारतवासी भौतिक सम्पदा की भूख से अमेरिका, इग्लेण्ड आदि देशो की ओर देख रहे है। इस प्रकार यहॉ उल्टी गगा बह रही है।

भारतीय जनता का मानस इतना गुलाम बन गया है कि उन्हे अपनी सस्कृति, अपनी नीति–रीति अच्छी नही लगती और प्रत्येक क्षेत्र मे विदेशो की नकल करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो गया है। विदेशो की जनता भारत से, उसकी सास्कृतिक और आध्यात्मिक सम्पदा से बहुत कुछ अपेक्षाए रखती है, जबकि भारतवासी रूस की रक्तक्राति से प्रभावित हो रहे है। वे रूस और चीन की नीतियो के राग अलाप रहे है जबकि वहा कि जनता उनको असफल मान कर अन्य मार्ग की शोध मे लगी हुई है। भारतीय जनता की यह अविवेकपूर्ण नकल–वृत्ति उसके दिमाग की गुलामी को अभिव्यक्त करती है।

दूसरो की तरफ अविवेकपूर्ण दृष्टि रखने से, पराई वस्तु का ही अच्छी मानने से भारतियो की दशा विषम और दीन–हीन बनी हुई है। यदि भारतीय जनता उत्तराधिकार मे मिले हुए अपने सिद्धाता पर चरित्र निष्ठा पर प्रामाणिकतापूर्वक आचरण करती तो वह विश्व म सबसे अग्रगण्य हाती।

अब भी कुछ नहीं बिगडा ह, अब भी सभलने का अवसर है।

यदि सुख–शाति चाहते हो, यदि दुनिया मे प्रगतिशील कहलाना चाहते हो, यदि प्रगति की दौड मे आगे बढना चाहते हो तो इसके लिए एक ही उपाय है, चरित्र की प्रतिष्ठा। यदि सच्चरित्र को महत्त्व दिया जाय, उसका वास्तविक मूल्याकन किया जाय, उसको जीवन का मापदण्ड बनाया जाय, उससे व्यक्ति को तोला जाय तो भारत का सारा का सारा नक्शा ही बदल सकता है। आवश्यकता है कि इस चारित्र्य गुण को जीवन के हर क्षेत्र मे पुन प्रतिष्ठित किया जाय। व्यक्तिगत जीवन मे, पारिवारिक परिवेश मे, धर्म और समाज के क्षेत्र मे, राष्ट्रीय परिधि मे और विश्व के विशाल दायरे मे भी चारित्रिक गुणो का विकास किया जाय। ऐसा करने से उन सभी समस्याओ का समाधान हो जाएगा जो आज भयकर रूप मे देश और विश्व के सामने खडी है।

सात्विक और तामसिक शक्तियो का सघर्ष विश्व के मच पर सदाकाल से चलता रहा है और चलता रहेगा। तामसिक शक्तिया आधी तूफान की तरह सात्विक शक्तियो को परास्त करने मे लग जाती है तदपि सात्विक शक्तियॉ अपनी साधना के आधार पर दृढ बनी रहती है। थोडे समय के लिए घटाटोप मेघ सूर्य की प्रभा को आच्छादित कर सकते है परन्तु सूर्य के अस्तित्व को वे समाप्त नहीं कर सकते। अन्ततोगत्वा सूर्य का प्रभापुज प्रकट होकर ही रहता है। यदि व्यक्ति सात्विकता के साथ चारित्र बल का सम्बल लेकर जीवन मे गतिशील होता है तो प्रारम्भ मे भले ही उसे आधी–तूफान का सामना करना पडे, अन्तत वह सब कसौटियो को पार करता हुआ जीवन मे सफलता प्राप्त करता है।

राजगृही नगरी के उन भौतिकवादी युवको ने राज्य या राजा के प्रति सभवत कुछ ऐसा व्यवहार किया होगा जिससे तत्कालीन नरेश ने उन व्यक्तियो को बिना कुछ सोचे समझे बहुत प्रश्रय दे दिया था, जिसके कारण वे युवक अपने आपको सर्वतत्र–स्वतत्र समझने लगे थे और मनमानी करने पर तुले थे। नीतिकारो का कथन है–

यौवन धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

जवानी अपने आप मे इतनी दीवानी है कि यदि इस पर नियत्रण नही रखा जाय तो यह भयकर अनर्थो की परम्परा को जन्म देती है। यह शात और सुखी जीवन मे आग लगाने वाली हो सकती है। जवानी (यौवन) के साथ यदि धन सम्पत्ति का योग हो जाय तो अनर्थों की सभावना एक पर एक ग्यारह की तरह बढ जाती है। यदि इसके साथ प्रभुत्व (सत्ता) मिल जाय तो 111 एक सौ ग्यारह की तरह अनर्थों की सभावना बहुत अधिक बढ जाती है। यदि इनके साथ अविवेक भी जुड जाय तो फिर कहना ही क्या है ? सर्वनाश ही समझ लेना चाहिए। यौवन, धन–सम्पदा, सत्ता और अविवेक–ये चारो अलग–अलग भी भयकर अनर्थकारी होते है। जब ये चारो एक स्थान पर एकत्र हो जाए तब तो कहना ही क्या ? उस परिस्थिति मे सर्वथा बर्बादी ही समझ लेनी चाहिए। वे सर्वनाश के कारण बनते है।

राजगृही की वह टोली इन चारो दुर्गुणो से भरी हुई थी। तरुणाई थी, वैभव था, सत्ता भी मिल गई थी और विवेक का दीपक भी बुझ चुका था। उनकी उद्दण्डता सीमा पार कर गई थी। अनैतिकता और चरित्रहीनता उनकी जीवनचर्या बन चुकी थी। निरकुशता के कारण वे मनमानी करने पर तुले हुए थे।

दुराचार की पराकाष्ठा

उन छह व्यक्तियो ने उद्दण्डता के साथ उद्यान मे प्रवेश किया। अर्जुन माली को पुष्पचयन करते हुए उन्होने देखा। उनकी दृष्टि यही तक सीमित नहीं रही। अर्जुन माली की धर्मपत्नी की ओर भी उनकी दृष्टि गई। उसके रूप लावण्य को देखकर वे युवक वासना से पागल बन गये और दुर्भावना से यक्षालय मे जाकर कपाट की ओट मे छिप गये। जब अर्जुन माली अपनी पत्नी सहित यक्षालय मे पहुचा त्योही पीछे से आकर उन्होने उसे पकड लिया और उसकी मुश्किया बाध दी। इसके पश्चात् उन्होने उसकी धर्मपत्नी के साथ जो अवर्णनीय दुर्व्यवहार किया, वह मानवता के लिए कलक और अभिशाप था। अर्जुन माली का कलेजा फटा जा रहा था। आक्रोश और रोष के कारण वह तमतमा रहा था परन्तु बन्धनो के कारण वह लाचार और विवश था। अपनी आखो के सामने यह अत्याचार और पापाचार होता हुआ देख कर उसका आक्रोश अत्यन्त तीव्र और प्रचण्ड हो उठा। वह सहसा बोल उठा, "क्या इस यक्ष मे कोई तथ्य और सत्य नही रह गया है ?"

ऐसे स्थानो पर व्यन्तर जाति के देव परिभ्रमण

रहते है। सयोग की बात है कि ज्योही अर्जुन माली के मन मे ऐसा विकल्प हुआ त्योही मुद्‌गरपाणि यक्ष ने अपनी वैक्रिय शक्ति के बल से अर्जुन माली के शरीर मे प्रवेश किया। यक्षाविष्ट अर्जुन माली ने अपने सब बन्धन तोड डाले और हजार पल प्रमाण मुद्‌गर–जो किसी के उठाये नही उठता था–उठाकर उन छहो व्यक्तियो को मार डाला। उसने अपनी पत्नी को भी इस अर्थ मे दोषी माना कि उसने अत्याचारियो के अत्याचार को सहन किया। यदि वह चाहती तो अत्याचारियो के अत्याचार की शिकार बनने के पूर्व ही अपनी जिह्वा खीचकर प्राण त्याग देती। उसे भी अपराधिनी मानकर उसने उसकी भी हत्या कर दी।

अपराध के भागीदार

अर्जुन माली की विचारधारा आगे बढी। उसने सोचा, इन युवको मे यह उद्दण्डता कैसे पनपी ? कौन है, इनको प्रोत्साहित करने वाला ? इस नगर के नरेश और जनता भी अपराधी है जिन्होने ऐसे गुडो को – अत्याचारियो को, दुराचारियो को, समाजद्रोहियो को प्रश्रय दिया है। कही भी चरित्रहीनता का प्रसग आवे और यदि जनता उसे चुप–चाप सहन करती रहे, यदि उसका उचित प्रतिकार न करे तो वह भी अपराधी है। यक्षाविष्ट अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करने लगा।

राजगृही नगरी मे इस भयकर घटना–चक्र को लेकर तहलका मच गया। राजकीय व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गई है। जनता का जीवन सकट मे पड गया। नरेश ने आज्ञा प्रसारित की कि 'कोई व्यक्ति नगर से बाहर नही जावे।

वाहर अर्जुन माली का उपद्रव है। वह बडा बलवान है। यदि कोई वाहर जाएगा तो वह प्राणो से हाथ धो बैठेगा। सरकार इसके लिए जवावदार नहीं होगी। सब लोग किले मे आ जावे। वहा सारी व्यवस्था रहेगी।' नगर के द्वार बन्द कर दिये गये। लोगो का आवागमन बन्द हो गया। तदपि उस यक्षाविष्ट अर्जुन ने इधर–उधर से आने–जाने वाले व्यक्तियो को मारना चालू रखा। उसने 1141 व्यक्तियो की हत्या कर दी। दुनिया की दृष्टि मे वह घोरतम पापी था परन्तु सोचने का विषय है कि उसे इस क्रूरतम स्थिति मे पटकने वाला कौन है ? क्यो वह इतना निष्ठुर पापी बन गया ?

बन्धुओ ! यदि गभीरता से चिन्तन करेगे तो मालूम होगा कि अर्जुन माली को हत्यारा बना देने मे चरित्रहीनता का सर्वोपरि भाग है। साथ ही वह जनता भी इसके लिए दोषी है जिसने ऐसे दुराचारियो को सहन किया। उन्हे इस सीमा तक स्वच्छन्द और उद्दण्ड बनने दिया। यदि जनता भावात्मक एकता के साथ उन युवको का प्रतिकार करती तो ऐसी नौबत ही नही आती। परिस्थिति–वश राज्य ने कैसी भी आज्ञा क्यो न प्रसारित कर दी हो, यदि जनता मे एकता हो तो वह जनार्दन का रूप ले लेती है। जनता जनार्दन अपने नैतिक और सात्विक आधारो पर एकता के बल से बडी–बडी शक्तियो को परास्त कर सकती है। परन्तु जनता मे यदि एकरूपता नहीं है, 'मुण्डे–मुण्ड मतिर्भिन्ना' की स्थिति है, अपनी–अपनी डफली और अपनी–अपनी राग' की कहावत चरितार्थ होती रहती है तो बडी दयनीय दशा बन जाती है। अर्जुन माली

ने हत्याए की, उसे पाप अवश्य लगा। फिर भी वह अकारण पाप नही कर रहा था। वह सामाजिक पाप के प्रतिशोध के लिए पाप कर रहा था। वह मूलत हत्यारा या पापी नहीं था। उसे हत्यारा और पापी बनाया चरित्रहीनता के अपराधियो ने। समाज से पोषण पाती हुई दुराचार की वृत्तियो ने उसे हिसक बनाया। इस अर्थ में इन हत्याओ के लिए अर्जुन माली जितना दोषी है, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक दोषी है, समाज मे व्याप्त दुराचार और अमर्यादित स्वेच्छाचार। अपराध को ऊपर–ऊपर से देखने के बजाय उसके मूल को पकडना चाहिए। यह देखना चाहिए कि अपराध का उदगम कहा से हुआ है ?

पतित पावन प्रभु महावीर का पदार्पण :

ऐसे विषम वातावरण मे आध्यात्मिक अन्तरिक्ष के जाज्वल्यमान सितारे, जगदुद्धारक, उज्ज्वलतम चारित्र के स्वामी, पापियो के पापो को धो देने वाले पतित–पावन श्रमण भगवान् महावीर राजगृही के बाहर पधारे। उन्हे किसी प्रकार का भय नहीं था क्योकि वे स्वय सब प्राणियो के अभयदाता थे। जो अभय देता है, वह निर्भय होता है। जो दूसरो को भय देता है, भयभीत करता है, आतकित करता है, वह स्वय भयभीत और आतकित होता है। प्रभु महावीर जगत् के सब जीवो के लिए अभयदाता थे। अत उन्हे भय किस बात का हो ? वे अपनी आत्मिक शक्ति से सम्पन्न थे। उनको किसी का क्या भय हो सकता है ? वे निर्भय होकर राजगृही के बाहर उद्यान मे विराजे।

नगर मे सूचना व्याप्त हुई कि पतित–पावन प्रभु महावीर

का नगर के बाहर पदार्पण हुआ है। नगरवासियो की उत्कठा हुई कि प्रभु के दर्शन कर नेत्रो को पावन करे, उनकी वाणी श्रवण कर कानो को कृतार्थ करे, उनकी पर्युपासना कर जीवन को धन्य बनावे परन्तु इस कार्य मे सबसे बडी बाधा है—अर्जुन माली का उपद्रव। वह मार्ग मे उपद्रव मचाता है। वह किसी को जीवित छोडने वाला नहीं है। बडी विषम समस्या है राजगृही के निवासियो के सामने।

यदि कोई भावुक व्यक्ति दर्शन करने हेतु जाने को उत्सुक बनता है तो उसके परिवार के व्यक्ति उसे समझाते है कि भाई! तुम यही से प्रभु को वन्दन कर लो। वे परमात्मा महावीर प्रभु यहीं से तुम्हारी वन्दना स्वीकार कर लेगे। वे घट—घट के ज्ञाता है। यदि हठ करके तुम जाओगे भी तो अर्जुन माली तुम्हे प्रभु के पास पहुचने भी नहीं देगा। बीच मे ही वह तुम्हारी हत्या कर देगा। अत यही अच्छा है कि यहीं से प्रभु को वन्दन कर लिया जाय। नागरिक बडी दुविधा मे फसे हुए थे। उन्हे कुछ सूझ नही रहा था।

सुदर्शन की दर्शन-भावना

श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ को जब प्रभु के पदार्पण के समाचार ज्ञात हुए तो वह प्रभु के दर्शनो की उत्कठा से विभोर हो उठा। उसकी दर्शन—भावना इतनी तीव्र और उत्कट थी कि वह अपने प्राणो की कीमत पर भी प्रभु के दर्शनो के लिए अधीर हो उठा। उसे अपने चरित्र—बल पर पूरा विश्वास था। उसने

ने हत्याए की, उसे पाप अवश्य लगा। फिर भी वह अकारण पाप नही कर रहा था। वह सामाजिक पाप के प्रतिशोध के लिए पाप कर रहा था। वह मूलत हत्यारा या पापी नही था। उसे हत्यारा और पापी बनाया चरित्रहीनता के अपराधियो ने। समाज से पोषण पाती हुई दुराचार की वृत्तियो ने उसे हिसक बनाया। इस अर्थ में इन हत्याओ के लिए अर्जुन माली जितना दोषी है, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक दोषी है, समाज मे व्याप्त दुराचार और अमर्यादित स्वेच्छाचार। अपराध को ऊपर–ऊपर से देखने के बजाय उसके मूल को पकडना चाहिए। यह देखना चाहिए कि अपराध का उद्गम कहा से हुआ है ?

पतित पावन प्रभु महावीर का पदार्पण .

ऐसे विषम वातावरण मे आध्यात्मिक अन्तरिक्ष के जाज्वल्यमान सितारे, जगदुद्धारक, उज्ज्वलतम चारित्र के स्वामी, पापियो के पापो को धो देने वाले पतित–पावन श्रमण भगवान् महावीर राजगृही के बाहर पधारे। उन्हे किसी प्रकार का भय नहीं था क्योकि वे स्वय सब प्राणियो के अभयदाता थे। जो अभय देता है, वह निर्भय होता है। जो दूसरो को भय देता है, भयभीत करता है, आतकित करता है, वह स्वय भयभीत और आतकित होता है। प्रभु महावीर जगत् के सब जीवो के लिए अभयदाता थे। अत उन्हे भय किस बात का हो ? वे अपनी आत्मिक शक्ति से सम्पन्न थे। उनको किसी का क्या भय हो सकता है ? वे निर्भय होकर राजगृही के बाहर उद्यान मे विराजे।

नगर मे सूचना व्याप्त हुई कि पतित–पावन प्रभु महावीर

का नगर के बाहर पदार्पण हुआ है। नगरवासियो की उत्कठा हुई कि प्रभु के दर्शन कर नेत्रो को पावन करे, उनकी वाणी श्रवण कर कानो को कृतार्थ करे, उनकी पर्युपासना कर जीवन को धन्य बनावे परन्तु इस कार्य मे सबसे बडी बाधा है—अर्जुन माली का उपद्रव। वह मार्ग मे उपद्रव मचाता है। वह किसी को जीवित छोडने वाला नहीं है। बडी विषम समस्या है राजगृही के निवासियो के सामने।

यदि कोई भावुक व्यक्ति दर्शन करने हेतु जाने को उत्सुक बनता है तो उसके परिवार के व्यक्ति उसे समझाते है कि भाई। तुम यहीं से प्रभु को वन्दन कर लो। वे परमात्मा महावीर प्रभु यहीं से तुम्हारी वन्दना स्वीकार कर लेगे। वे घट—घट के ज्ञाता है। यदि हठ करके तुम जाओगे भी तो अर्जुन माली तुम्हे प्रभु के पास पहुचने भी नहीं देगा। बीच मे ही वह तुम्हारी हत्या कर देगा। अत यही अच्छा है कि यहीं से प्रभु को वन्दन कर लिया जाय। नागरिक बडी दुविधा मे फसे हुए थे। उन्हे कुछ सूझ नही रहा था।

सुदर्शन की दर्शन-भावना

श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ को जब प्रभु के पदार्पण के समाचार ज्ञात हुए तो वह प्रभु के दर्शनो की उत्कठा से विभोर हो उठा। उसकी दर्शन—भावना इतनी तीव्र और उत्कट थी कि वह अपने प्राणो की कीमत पर भी प्रभु के दर्शनो के लिए अधीर हो उठा। उसे अपने चरित्र—बल पर पूरा विश्वास था। उसने

सोचा, 'मै श्रमणो का उपासक हूँ और श्रमण भगवान् महावीर पधारे है। यदि मै उनकी उपासना नही करता हूँ तो मैं वास्तविक अर्थों मे श्रमणोपासक नहीं हूँ। मैने श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्वज्ञान सीखा है, आत्मा और शरीर के भेद को जाना है, जड और चेतन के विवेक को समझा है। आत्मा शाश्वत है और शरीर अशाश्वत है। अशाश्वत शरीर के लिए शाश्वत धर्म की अवहेलना करना उचित नहीं है। मेरा जीवन आध्यात्मिक धरातल पर अवलम्बित है। प्राणो से अधिक महत्त्व होता है धर्म और कर्तव्य का। अतएव किसी भी कीमत पर मुझे प्रभु के दर्शनार्थ जाना ही है।'

उक्त भावना को लेकर सुदर्शन घर से निकाला। वह निर्भय होकर आगे बढ रहा है। ऐसी निर्भीकता भौतिक जीवन से ऊपर उठने पर आती है। जब तक भौतिक पिण्ड शरीर पर ममत्व है, जब तक भौतिक–पौद्गलिक पदार्थो मे आसक्ति है, तबतक आध्यात्मिक तत्त्व पर विश्वास नही बैठता। एक बार अध्यात्म मे पक्का विश्वास हो जाता है तो वह व्यक्ति भौतिक तत्त्वो की परवाह नहीं करता। सुदर्शन गृहस्थ था परन्तु उसमे सदाचार का–अध्यात्म का प्रबल बल था। उस अध्यात्म की आस्था ने उसे निर्भय बना दिया था। वह प्रभुदर्शन के लिए गन्तव्य मार्ग पर आगे बढ रहा है।

सुदर्शन को जाते हुए देख कर कुछ लोग उसका उपहास भी करने लगे। वे कहते थे–'देखो, धर्म का ढोगी जा रहा है। जब उसका बाप अर्जुन माली सामने आयेगा तो खबर पडेगी कि दर्शन करना कैसा होता है ?' इस प्रकार ऊची–नीची अनेक प्रकार की चर्चाए भी सुनाई पडती थी। परन्तु सच्चा व्यक्ति मान–अपमान से

विह्वल नही होता। वह न प्रशसा का भूखा होता है और ने निन्दा अपमान से डरता है। वह तो अनासक्त भाव से, कर्तव्य पथ पर आगे बढता रहता है।

सुदर्शन राजगृही से बाहर निकल गया। अर्जुन माली उसकी तरफ आया। कई दिनो से उसे कोई शिकार नहीं मिल रहा था। भूखे सिह की तरह वह उसकी ओर लपका। सेठ सुदर्शन ने सोचा कि यह अर्जुन माली अभी जिस स्थिति मे चल रहा है, उसे देखते हुए इस समय इसे समझाने का अवसर नहीं है। यह मुझ पर आक्रमण करेगा ही। उपसर्ग की स्थिति को सामने देख कर मुझे आत्मशुद्धि कर लेनी चाहिए। मुझे शरीर का मोह नहीं है, यह जाये या रहे, इसकी मुझको चिन्ता नहीं है परन्तु आत्मिक आलोचना द्वारा मुझे अपनी आत्मा का सशोधन कर लेना चाहिए। यह विचार कर वह शुद्ध भूमि को पूज कर वहा बैठ गया। वहीं से प्रभु को नमस्कार किया और निवेदन किया कि मै आपके दर्शन हेतु आ रहा था परन्तु मार्ग मे उपसर्ग आ जाने के कारण अपने जीवन की आलोचना आपके चरणो मे अर्पण करता हूँ। मैंने अपने जीवन को शुद्ध रखने का प्रयास किया है, किसी तरह का अनैतिक आचरण नहीं किया है, समाज या राष्ट्र के प्रति द्रोह नही किया है, नीतिपूर्वक धार्मिक जीवन यापन करते हुए मै आगे बढा हूँ तदपि भूल हो जाना स्वाभाविक है। जानते—अजानते होने वाले दोषो की शुद्धि हेतु मे आलोचना ग्रहण करता हूँ। आगे के लिए प्रत्याख्यान

करता हूँ। इस उपसर्ग मे यदि यह जीवन छूट जाय तो जीवन पर्यन्त के लिए चारो आहार और अठारह ही पापो का प्रत्याख्यान करता हूँ। यदि उपसर्ग टल जाय तो श्रावक की मर्यादा से चलूगा। इस प्रकार उसने सागारी सथारा अगीकार कर लिया। वह निर्भय होकर परमात्मा का ध्यान करने लगा। उसने प्रभु से यह प्रार्थना नही की कि 'हे प्रभो ! मै आपका उत्कृष्ट भक्त हूँ। आपके दर्शन के लिए आ रहा हूँ अत आप मेरी रक्षा करे। यदि मै बीच मे मारा जाऊगा तो लोग आपको बदनाम करेगे कि देखो भगवान् का भक्त मारा गया। इस प्रकार स्वार्थ–भरी प्रार्थना उसने नही की। सच्चा भक्त भौतिक कामना नही करता। वह अपने स्वार्थ के लिए प्रभु को प्रार्थना की रिश्वत नहीं देता। वह अपनी कर्तव्य–निष्ठा को लेकर ही चलता है। दूसरो के सरक्षण के लिए वह अपनी जीवन अर्पण कर देता है परन्तु अपने जीवन के लिए वह याचना नहीं करता।

जटायु की भक्ति

रामायण मे जटायु का प्रसग आता है। रावण ने इस पक्षी के पख उखाड दिये थे। सीता की खोज मे जब पुरषोत्तम राम उसके पास पहुचे तो उन्होने उसे गोद मे उठा लिया और कहा, 'तूने अनीति का प्रतिकार किया, रावण के साथ सघर्ष मे उसने तेरे पख उखाड लिये। तूने अपनी शक्ति के अनुसार बहुत बडा कार्य किया है। मै तुझसे प्रसन्न हूँ। तू चाहे तो मै तेरे सोने के पख लगा दू और चाहे तो पहले जैसे ही पख लगा दू।'

जटायु ने गद्गद् होकर कहा–'प्रभो ! मुझे न सोने के पख चाहिए और न पूर्ववत् पख ही। मुझे तो केवल आपकी गोद चाहिए और मै उसी मे अपने जीवन का अन्तिम क्षण बिताना चाहता हूँ'।

बन्धुओ ! जटायु जैसी भक्ति भावना आज के मनुष्यो मे अथवा भक्त कहे जाने वालो मे है क्या ? यदि जटायु के स्थान पर आज का मनुष्य हो और कोई उससे कहे कि भाई, मानलो यदि किसी ने तुम्हारे हाथ पाव तोड दिये तो क्या मै सोने के हाथ–पाव लगा दू ? तो कितने भाई तैयार हो जावेगे ? लोग सोने के पीछे पागल हो रहे है परन्तु यह नहीं जानते कि पीछे भागने से सोना नहीं मिलता। छाया के पीछे ज्यो–ज्यो दौडा जाता है, त्यो–त्यो छाया आगे भगती है। छाया को पीठ देते हैं तो वह अपने आप पीछे भागती चली आती है।

सुदर्शन का ध्यान

सुदर्शन श्रमणोपासक दृढ आत्मनिष्ठा के साथ वेठा हुआ हे। वह आत्मालोचन मे लगा हुआ है। ध्यान की मुद्रा मे वह अवस्थित है। ध्यान की भी कई मुद्राए होती हें। किसी मे ऑखे बन्द की जाती हैं, किसी मे आखे खुली रहती हैं और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर रखी जाती है। उपसर्ग की स्थिति मे सेठ सुदर्शन की ध्यान मुद्रा मे आँखों की पलक खुली हुई थीं। अर्जुन माली का मुद्गर उठा, यह सुदर्शन की दृष्टि मे आ गया था। सठ अविचल रहा। उसके मन मे तनिक भी अस्थिरता नहीं आई, वह डावाडोल नही बना, अर्जुन के प्रति उसे तनिक भी द्वेष नहीं आया।

मुद्गर–प्रहार की प्रतीक्षा मे है परन्तु यह क्या हुआ, मृद्गर अर्जुन के हाथ मे ऊचा उठा ही रह गया, वह नीचे नही आ सका। ज्योही सुदर्शन की दृष्टि अर्जुन पर पडी, उसके शरीर से यक्ष का प्रभाव हट गया। अर्जुन धडाम से पृथ्वी पर गिर पडा। सघर्ष की सारी स्थिति समाप्त हो गई। सुदर्शन अब अर्जुन माली को भी आत्मीय भाव से देखने लगा। उसे इस घृणित कल्पना का स्पर्श तक नहीं हुआ कि ' यह हत्यारा है, इसने 1141 निरपराध व्यक्तियो की हत्या की है, यह मर रहा है तो मरने दो, ऊपर से दो लात और टिकाओ। पापी को पाप की सजा मिलनी ही चाहिए। ' सेठ सुदर्शन ने उससे घृणा नही की। उसने उसकी सार–सभाल की। उसे होश मे लाने के प्रयास किये। होश आने के बाद अर्जुन माली ने पूछा–'आप कौन है ? कहा पधार रहे है ?'

सुदर्शन ने मृदु स्वर मे कहा, ' मै श्रमणोपासक सुदर्शन हूँ और मेरे आराध्य श्रमण भगवान् महावीर की उपासना के लिए जा रहा हूँ। '

अर्जुन सोचता है कि जिसके भक्त मे इतनी शक्ति है कि दृष्टि पडते ही यक्ष का प्रकोप नष्ट हो गया, उसके भगवान् कितने शक्तिशाली होगे ?'

आप भी सोचते होगे कि ' दृष्टि पडने मात्र से यह सब कैसे हो गया ?' परन्तु दृष्टि मे अचिन्त्य शक्ति होती है। उसे साधने की आवश्यकता है। सच्चरित्रता और पवित्राचार के द्वारा यह सभव है। चरित्रहीनता हो तो अन्तर की साधना नहीं होती। चरित्रहीन

की दृष्टि मे कोई ताकत नहीं होती। उसकी दृष्टि क्षीण होती जाती है। जो आध्यात्मिक जीवन निष्ठा से स्पदित होता है, उसकी दृष्टि मे शक्ति आ जाती है। आप इस विषय मे चिन्तन करेगे तो आपको यह अनुभव हो सकेगा।

आत्मिक बल के सहारे दुनिया आगे वढ सकती है। जव अन्य सब बल हार जाते है तब आध्यात्मिक शक्ति का सहारा प्राप्त होता है। ज्ञानीजनो ने इस भाव को प्रकट करते हुए कहा है –

आतम बल है सब बल का सरदार, आतम वल ही है।
आतम बल वाला अलबेला, निर्भय होकर देता ठेला।
लड कर शेष जगत से, आखिर लेता बाजी मार।
आतम बल ही है, सब बल का सरदार, आतम वल ही है।

कविता की अनुभवपूर्ण कडियो मे कहा गया है कि 'दुनिया मे कई तरह के बल माने गये है परन्तु सब बलो मे प्रधान बल आत्म–बल ही है। आत्म–बल की शक्ति बडी विचित्र होती है। दुनिया की सारी ताकते एक ओर हो तो भी वह अकेला ही उनसे सघर्ष करता है और अन्तत विजय प्राप्त करता है। सेठ सुदर्शन का उदाहरण आपके सामने है। वह अकेला ही आपत्ति की पर्वाह किये बिना प्रभु के दर्शन हेतु चला और कोई उसके साथ नही था। केवल आत्म–बल ही उसका अभिन्न साथी था। आत्मिक बल से सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन माली को परास्त किया। उसके उपद्रव से जनता को मुक्त किया और स्वय

अर्जुन माली तक के जीवन की दिशा को नया मोड दे दिया। यह बात सुदूर अतीत काल की है। परन्तु वर्तमान समय मे भी आत्मिक शक्ति के चमत्कार की घटनाए कर्णगोचर होती है। उनमे से एक इस प्रकार है –

फक्कड महात्मा .-

अग्रेजो के शासन–काल की घटना है। एक आत्मिक शक्ति का प्राथमिक साधक अपने निजी कारणो को लेकर मद्रास की ओर रेल से यात्रा कर रहा था। एक अग्रेज ऑफिसर भी उसी डिब्बे मे आकर बैठा। उसने देखा कि यह हट्ठा–कट्ठा हिन्दुस्तानी है। वह भयभीत और आशकित होने लगा। उसने रेल अधिकारियो से कहा कि इस व्यक्ति को इस डिब्बे से हटा दो। अग्रेजो का साम्राज्य था। रेल अधिकारियो ने उस महात्मा को कहा कि तुम यहा से उठ कर दूसरे डिब्बे मे चले जाओ। उसने कहा, ' क्यो जाऊ ? मेरे पास भी टिकिट है। मै यहॉ से नही हटूगा।' अधिकारियो ने बहुतेरा कहा परन्तु महात्मा भी फक्कड थे। वे अड गये। उधर वह अग्रेज शीघ्रता कर रहा था–जल्दी उतारो इसको। अधिकारियो ने कहा–' बाबा ! उतर जाओ नही तो घसीट कर उतार देगे। उसने सोचा–'अब जिद्द करना बेकार है, अपमानित होने से क्या लाभ है ?' वह उतर पडा। अग्रेज ऑफिसर प्रसन्न हो गया। अधिकारियो ने गाडी चलाई परन्तु यह क्या ? इञ्जिन आगे बढता ही नहीं ! ड्राइवर ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु सब निष्फल हुआ। दूसरा इञ्जिन मगवाया गया परन्तु वह भी कारगर सिद्ध नहीं हुआ। तीसरा इजिन लगाया गया, वह भी निरर्थक हुआ।

आखिर उन्होने देखा कि बात क्या है ? चर्मचक्षुओ से कुछ प्रतीत नहीं हुआ। सूक्ष्म–दर्शक यन्त्र से देखने पर ज्ञात हुआ कि कुछ किरणें वहा सक्रिय है। उसका अनुसधान किया गया कि आखिर ये किरणे कहा से आ रही है ? अनुसधान से पता चला कि जिस फक्कड महात्मा को गाडी से नीचे उतारा था, वह अपने सिर के पीछे हाथ रख कर बैठा हुआ था और उसकी दृष्टि इजिन पर लगी हुई थी। उसकी दृष्टि मे इतनी ताकत थी कि इजिन की मशीनरी भी ठप्प हो गई। रेल्वे के अधिकारी आश्चर्य चकित रह गये। उन्होने अग्रेज ऑफिसर को सारी स्थिति समझाई। वह ऑफिसर नीचे उतरा। उस फक्कड महात्मा के चरणो मे टोप डाल कर कहा कि 'आप पधारिये और उसी डिब्बे मे बैठिये।' उसने कहा, 'नही, तुम जाओ! हिन्दुस्तानियो के प्रति तुम ऐसा दुर्व्यवहार करते हो! तुम बैठो उस डिब्बे मे, हम बाद मे आ जाएगे।' अग्रेज ऑफिसर ने बहुत अनुनय–विनय की तब कही जाकर वह फक्कड उसी डिब्बे मे बैठा। उसके बैठते ही इजिन धड–धड करता हुआ आगे बढता गया।

भाइयो! यह चमत्कार तो आध्यात्मिक शक्ति का साधारण रूप है। इससे कई गुनी अधिक शक्ति होती है आत्मबल की। कवि आगे कहता है –

> कैसी भी हो फौज भयकर, तोप मशीने हो प्रलयकर।
> आत्म–बली रहता है निर्भय, देता सभी को हार।
> आतम बल ही है सब बल का सरदार, आतम बल ही है।।

तोप, मशीनगन और अन्य शस्त्रास्त्र आध्यात्मिक शक्ति के सम्मुख तुच्छ है। गाधी जी के जीवन की भी एक घटना प्रासगिक रूप से उल्लेखनीय है।

गाधी जी का आत्मबल -

दक्षिण अफ्रीका की घटना है। वहा मजदूरो और मालिको के बीच वेतन वृद्धि और कार्य के घटो को लेकर विवाद हो गया था। गाधी जी ने मजदूरो के पक्ष को उचित माना, अतएव वे उनका मार्ग–दर्शन कर रहे थे। मालिको ने सोचा कि यह गाधी मजदूरो को प्रोत्साहित कर रहा है, अतएव इसको ही अपने पक्ष मे कर लेना उचित है। यह गाधी गरीब देश–हिन्दुस्तान– से आया है, शायद यह पैसो का भूखा है। उन्होने गाधी जी को एकान्त मे बुलाया और कहा, 'मिस्टर गाधी। तुम दस–बीस हजार रुपये ले लो। इन मजदूरो का दिमाग खराब मत करो।'

गाधी जी ने उत्तर दिया। मै मजदूरो का माथा खराब नही कर रहा हूॅ अपितु उनका मस्तिष्क सुधार रहा हूँ। मै पैसो का गुलाम नही हूॅ। मै न्याय–नीति मे विश्वास करता हूॅ। अहिसा मे मेरी आस्था है। मजदूरो को उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए। उनसे उचित सीमा तक ही काम लिया जाना चाहिए। वे मानव है और उन्हे मानवीय अधिकार किसी भी कीमत पर मिलने ही चाहिए। ऐसा मेरा दृढ मन्तव्य है।

मालिको ने गाधी जी को फुसलाने के बहुत प्रयत्न किये। बडे–बडे प्रलोभन दिये परन्तु गाधी जी ने नीति पर दृढ रहते हुए

सब प्रलोभनो को ठुकरा दिया। जब प्रलोभन कारगर न हुए तो उन्होने गाधी जी को धमकी दी। एक व्यक्ति पिस्तौल लेकर खडा हो गया और कहने लगा कि 'मिस्टर गाधी, अपने इष्टदेव को याद कर लो। बटन दबाते ही समाप्त हो जाओगे।'

गाधी जी का उत्तर बडा मार्मिक था। वे बोले, ' जो व्यक्ति मुझे इष्टदेव के स्मरण की बात कहता है, वह मुझे कभी नही मार सकता।'

उस व्यक्ति के हाथ से पिस्तौल नीचे गिर पडी। वह थर–थर कापने लगा। गाधी जी वहा से निकल गये।

वचन-सिद्धि -

ऐसी कई घटनाए सतो के जीवन के सम्बन्ध मे तथा निष्ठावान चारित्र–सम्पन्न श्रावको के सम्बन्ध मे सुनने को मिलती है। चारित्र–सम्पन्न व्यक्ति के वचनो मे अपूर्व बल आ जाता है। उसको वचन–सिद्धि प्राप्त हो जाती है। स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी की कई बाते कई बार आपके समक्ष रख देता हूँ। उनके मुख से स्वाभाविक रूप से निकला हुआ वचन फलीभूत होता हुआ प्राय देखा जाता था। वे जानबूझ कर इरादा पूर्वक सिद्धि की दृष्टि से कोई वचन नही बोलते थे परन्तु सहज भाव से यदि कोई वचन निकल जाते थे तो वे फलीभूत होते थे।

आपने जम्बू स्वामी का चरित्र सुना है। उन्होने सोचा कि आज की रात्रि मे धन चोरी मे नही जाना चाहिए।' उनके इतने से सकल्प से चोरो के पैर चिपक गये । उनमे कैसी

अद्वितीय चारित्र–निष्ठा थी। देवागना सदृश आठ नवविवाहिता नववधुए उनके समक्ष खडी है, वे उन्हे मनाने के लिए आतुर हो रही है परन्तु जम्बूकुमार के मन मे तनिक भी विकार उत्पन्न नही हुआ। कितनी प्रबल थी उनकी चरित्र–निष्ठा ! इस प्रकार की निष्ठा कब आती है ? जब आध्यात्मिकता को हृदयगम कर लिया जाता, जब सदाचार की शक्ति एव महत्ता की छाप दिल पर गहरी अकित होती है तब ऐसी निष्ठा आ सकती है। आज तो अध्यात्म को उपहास का विषय माना जा रहा है परन्तु याद रखना चाहिए कि यदि अध्यात्म की अवहेलना होती रही तो दुनिया मे सुख–शाति का सचार कदापि सभव नही। अध्यात्म का आदर होगा तो ही दुनिया सर्वनाश से बच सकेगी।

अखूट खजाना -

अध्यात्म आनन्द का अखूट खजाना है। अपने ही अन्दर आनद का अजस्र स्रोत बह रहा है परन्तु अफसोस है कि मानव आनन्द पाने के लिए बाहर भटक रहा है। उसके पास सब कुछ होते हु¯ भी वह अपने को दरिद्र अनुभव कर रहा है। यह कैसी विडम्बना है कि अपने पास रही हुई वस्तु को मनुष्य बाहर ढूढने का प्रयत्न कर रहा है। घर मे अखूट खजाना है परन्तु वह छिपा हुआ है। उसे ही अनावृत करने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। जो वस्तु जहा है, वही वह प्राप्त हो सकती है, जो जहा नही है, वहा ढूढने से वह प्राप्त नही हो सकती। आनन्द अन्दर रहा हुआ है। उसे अपने ही अन्दर खोजो, बाहर न भटको। चरित्र–निष्ठा के साथ अध्यात्म के सरोवर मे अवगाहन करो, सब पाप और ताप

नष्ट हो जाएगे और अलौकिक शाति प्राप्त होगी।

भाइयो! दृढ सकल्प करिये कि चाहे जैसी आधी या तूफान हो, दृढ निष्ठा के साथ हमे चलना है, चरित्र को उज्ज्वल बनाना है और आत्मा की आवृत्त शक्तियो को अनावृत करना है। इसके लिए सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना करना है–

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वदत पाप पुलाय

अर्जुन का प्रभु-वन्दन -

प्रभु को वन्दन करने से पाप नष्ट हो जाते है परन्तु वन्दन कैसा हो ? अर्जुन माली ने प्रभु महावीर को प्रथम बार ही वन्दन किया और ऐसी तन्मयता से वन्दन किया कि वह सच्चरित्रता के महत्त्व को समझ कर प्रभु के चरणो मे दीक्षित हो गया। आपको विचार आता होगा कि प्रभु महावीर ने ऐसे पापी को साधु कैसे बना लिया ? बन्धुओ! भगवान् पतित–पावन हैं। वे पतितो के उद्धारक हैं, पतितो के शरणदाता है। प्रभु की चरण–शरण मे आकर पतित से पतित व्यक्ति भी अपना कल्याण कर सकता है। पापी व्यक्ति प्रभु के सम्पर्क में आकर अपने जीवन की दिशा को मोड लेता है। वह प्रायश्चित्त के द्वारा पुराने पापो की शुद्धि कर लेता है। शास्त्रकार फरमाते है –

जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा

जो कर्म करने मे शूर है, वह धर्म के आचरण मे भी शूर हो सकता है। अर्जुन माली ने निकाचित कर्मों के उदय से क्रूर

किये परन्तु प्रभु का सम्पर्क पाते ही वह धर्म मे शूर हो गया। कर्मो के बन्धनो को तोडने मे उसने शूरता प्रदर्शित की और इतनी सीमा तक शूरता दिखाई कि वह उसी भव मे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मे चला गया। वह सुदर्शन और प्रभु महावीर से भी पहले मुक्त हो गया। कितना बदल जाता है जीवन। आप भी प्रयत्न करिये और अपने जीवन की धारा को अन्दर की ओर मोडिये। जीवन मगलमय बन जाएगा।

पर्युषण पर्व चल रहे है। दो दिन के बाद सवत्सरी पर्व आने वाला है। अर्जुनमाली सरीखा व्यक्ति आपके सामने हो तो क्या आप उसे क्षमा प्रदान करेगे ? हमे क्षमा प्रदान करने की और क्षमायाचना करने की क्षमता प्राप्त करनी है। सवत्सरी पर्व की सार्थकता इसी मे है। यही इस पर्व का सदेश है। इसकी तैयारी इन पर्व--दिनो मे करनी है। हृदय को शुद्ध बनाना है, चरित्र को उज्ज्वल करना है, वृत्तियो को अन्तर्मुखी बनाना है। वहिर्वृत्तियो से या भौतिकता के मोह से कभी कल्याण होने वाला नही है। सम्पत्ति नश्वर है। आज है तो कल नही। वह महत्त्वपूर्ण वस्तु नही है। महत्त्वपूर्ण है सदाचार, सद्व्यवहार, चरित्र–निष्ठा और अध्यात्म रमण। इस दृष्टि को लेकर चलेगे तो आपका जीवन मगलमय बन सकेगा।

देशनोक
7975 }

❋❋❋❋

नाव तिराई बहता नीर में

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वन्दत पाप पुलाय।।
कष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
शुद्ध समकित चारित्र नो हो परम क्षायक गुण लीन।।
ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञान, दर्शन, बल ये तिहूँ हो, प्रकट्या अनन्तानन्त ।।श्री सुवि ।।

नौवे तीर्थंकर प्रभु सुविधि जिनेश्वर के चरणो मे वन्दन की उदात्त भावना के साथ कवि ने अपने भावो की कुसुमाञ्जलि समर्पित की है। सही अर्थों मे जब प्रभु को वन्दन किया जाता है तो आत्मा की मलिनता धुल जाती है। आत्मा शुद्ध बनती है तो उसमे धर्म प्रतिष्ठापित होता है। दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है–

"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ"

जैसे शुद्ध पात्र मे रहा हुआ दूध विशेष रूप से गुणकारी होता है, उसकी शोभा मे विशेष वृद्धि हो जाती है उसी तरह शुद्ध हृदय मे धर्म की प्रतिष्ठा की जाती है तो वह विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जैसे मणिरत्न अपने आपमे अनुपम प्रभा और आभा से सम्पन्न होता है किन्तु जब वह स्वर्ण के साथ सयोजित होता है तो

उसकी चमक–दमक कई गुणा बढ जाती है। उसी तरह शुद्ध हृदय मे स्थापित किया हुआ धर्म अलौकिक गुणो से मण्डित हो जाता है। प्रभु को वन्दन करने से–प्रभु के चरणो मे स्वय को समर्पित करने से चित्त शुद्ध होता है, मन मे प्रसन्नता होती है, आत्मा मे प्रसाद गुण की वृद्धि होती है। प्रभु की प्रार्थना से अलौकिक और अनुपम शान्ति का अनुभव होता है। जो शुद्ध हृदय से, एकाग्रचित्त से, तन्मय होकर प्रभु का स्मरण करता है–उसकी आत्मा कर्म–मैल से मुक्त हो जाती है। कवि ने इस प्रार्थना मे यही भाव व्यक्त किये है कि आत्मा का मौलिक स्वरूप कर्मो के आवरण से आच्छन्न है और यदि प्रभु को सही अर्थो मे वन्दन किया जाय तो कर्मों के आवरण छिन्नभिन्न हो सकते है और आत्मा के स्वाभाविक गुण–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्त बल–अभिव्यक्त हो सकते हैं।

प्रबलतम प्रतिपक्षी :-

जैसा कि पूर्व के प्रवचनो मे कई बार प्रतिपादित किया जा चुका है कि आत्मा का प्रबलतम प्रतिपक्षी 'मोह' है। यही आठो कर्मो का राजा है। यही आत्मा के प्रधान गुण–सम्यक्त्व और चारित्र का मुख्य बाधक है। आत्मा को अपने स्वरूप से वचित करने वाली और पुद्‌गलो मे रमण कराने वाली मोह–कर्म की शक्ति ही तो है। मोह–कर्म के रहते हुए ही शेष ज्ञानावरणीय आदि कर्म हरे–भरे और शक्तिशाली रहते है। मोह के नष्ट होते ही अन्य घाती कर्म भी अन्तर्मुहूर्त्त मे क्षीण हो जाते है। जैसे मस्तक–सूची के प्रहत

होते ही तालवृक्ष धराशायी हो जाता है उसी तरह मोह के क्षीण होते ही अन्य कर्म क्षीणप्राय हो जाते है। राजा के भाग जाने पर जैसे सेना भी भाग खडी होती है वैसे ही मोह राजा के परास्त होते ही अन्य कर्मों की सेना भी हार खाकर भाग जाती है।

ज्यो–ज्यो मोह के वन मे दावानल लगती है त्यो–त्यो आत्मा के गुणरूपी पौधे हरे–भरे होते है। ज्योही मोह की जड उखड जाती है त्योही आत्मा को मोक्ष–रूपी फल की प्राप्ति होती है। इसी भाव को इस सुपरिचित दोहे मे व्यक्त किया गया है –

आगे – आगे दव बळे पीछे हरिया होय।
बलिहारी उस वृक्ष की जड काट्या भल होय।

जब भवस्थिति परिपक्क होती है और आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ से मोहकर्म को परास्त कर देता है, तब क्षायिक समकित और क्षायिक चरित्र की प्राप्ति होती है। मोह के क्षीण होते ही अन्तर्मुहूर्त्त काल मे ज्ञानावरणीय–कर्म, दर्शनावरणीय–कर्म और अन्तराय–कर्म एक साथ क्षीण हो जाते है जिसके कारण आत्मा को अनन्त–ज्ञान, अनन्त–दर्शन और अनन्त बल–वीर्य की प्राप्ति हो जाती है। आत्मा की अन्य शक्तिया भी परिपूर्ण रूप ले लेती हैं। आत्मा रूपी कलानिधि को सम्पूर्ण कलाए प्रकट हो जाती हैं, तब लोकरूपी आकाश मे आत्मा रूपी चन्द्रमा अपनी

विशुद्धि और आत्म-विकास की यह पराकाष्ठा ही हम सबका लक्ष्य है। इसे प्राप्त करने के लिए ही सब प्रयत्न और साधनाए की जाती है। हमारे सारे धार्मिक अनुष्ठानो और क्रियाकलापो का यही अन्तिम लक्ष्य-बिन्दु है।

साधना क्या उधार का धधा है ?

मानव का मस्तिष्क प्रत्यक्ष फल के लिए लालायित रहता है। वह प्रत्येक क्रिया का परिणाम प्रत्यक्ष देखना चाहता है। साधना का परिणाम भी वह चटपट और प्रत्यक्ष मे प्राप्त करना चाहता है। वह उधार का धधा पसन्द नहीं करता, वह रोकड-नगद का धधा चाहता है। उसके सामने यह प्रश्न खडा होता है कि आत्मोत्थान के लिए की जाने वाली साधनाओ का परिणाम इसी जन्म मे मिलेगा या भवान्तर मे ही मिलेगा ? यदि साधनाओ का फल परलोक मे ही मिलता है तो वह उधार का धधा है। यदि प्रत्यक्ष मे उसका परिणाम प्राप्त नही होता तो उसके प्रति मानव का मस्तिष्क अभिप्रेरित नही होता। यह धारणा सही नही है कि साधनाओ का फल परलोक मे ही मिलने वाला है। साधना उधार का धधा नहीं है। वह नकद का व्यापार है। जितनी-जितनी और जिस-जिस रूप मे साधना की जाती है उसका फल भी उतने ही अशो मे यहा प्राप्त होता है। जिस रूप मे साधना की आराधना होती है उस रूप मे उसका परिणाम भी यहा परिलक्षित होता है। साधना का सुफल यहा भी प्राप्त होता है और भवान्तर मे भी उसकी परम्परा भव्य फलप्रदायिनी वनती है। जिसने

साधना के द्वारा इस जीवन को रमणीय बनाया, वह भवान्तर मे भी रमणीयता को प्राप्त करेगा।

तीर्थंकर देवो ने आत्मा के विकास के चौदह सौपान बताये है जिन्हे आगम की भाषा मे गुणस्थान कहते हैं। आत्मा अपने लक्ष्य की ओर ज्यो–त्यो आगे बढता जाता है त्यो–त्यो उसको उसकी साधना के सुफलो का प्रत्यक्ष मे अनुभव होता जाता है। तेरहवे गुणस्थान मे जब वह पहुचता है तो उसे अनन्त–ज्ञान, अनन्त–दर्शन, अनन्त बल–वीर्य और क्षायिक चारित्र की प्राप्ति होती है, जिसका उल्लेख प्रार्थना की कडियो मे किया गया है। चवदहवा गुणस्थान आत्मा की सर्वोत्कृष्ट विकसित अवस्था है जिसमे आत्मा परमात्मा–स्वरूप बन जाता है, सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है। साधना का यह सुफल प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस मानव–शरीर से ही यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है। अनन्त आत्माओ ने अतीत काल मे इस मानव भव से परम पद की प्राप्ति की है, वर्तमान मे भी विदेहादि क्षेत्रो से कर रहे है और अनागत काल मे भी परम पद प्राप्त करेगे। अत यह कहा जा सकता है कि साधना की आराधना उधार का धधा नही अपितु नगद का व्यापार है।

'खण जाणाहि पडिए'

इस प्रकार की आध्यात्मिक आराधना का सुअवसर मानव–भव मे ही प्राप्त होता है। [illegible]

महत्ता को एक स्वर से स्वीकार किया है। शास्त्रकारो ने कहा है –

'खण जाणाहि पडिए'

विवेकी पुरूष इस सुअवसर को पहचाने। शास्त्रकारो का आशय यह है कि मनुष्यो को मानव–भव के रूप मे आत्मकल्याण का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है। इस सुअवसर को पहचान कर जो उसका सदुपयोग करता है वही पण्डित है, वही विवेकी है, वही विचक्षण है।

भगवान् आदिनाथ प्रभु ने (भरत द्वारा अपने 98 भाइयो को उसके निर्देश मे रहने की सूचना दिये जाने से अपमानित हुए) अपने 98 पुत्रो को जो उद्‌बोधन दिया वह बडा हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी है। सूत्र कृतागसूत्र के द्वितीय 'वेयालिय' अध्ययन मे इसका वर्णन है। आदिनाथ ऋषभदेव प्रभु फरमाते है –

'सबुज्झह कि न बुज्झह, सम्बोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णा हूवणमन्ति राईओ, नो सुलह पुणरावि जीविअ ।।'

'समझो ! क्यो नही समझते हो ? यह अपूर्व अवसर तुम्हे प्राप्त हुआ है। इस भव से अन्यत्र परलोक मे ज्ञान की प्राप्ति, अत्यन्त दुर्लभ है। यह मानव–भव पुन प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। अभी सहज ही तुम्हे यह प्राप्त है। इस प्राप्त सुअवसर से लाभ उठा लो। यदि यह अवसर हाथ से निकल गया तो फिर पछताना पडेगा। जो समय चला गया, वह पुन लौट कर नहीं आता। बडा सुन्दर अवसर प्राप्त है, इससे लाभ उठाना तुम्हारे हाथ मे है।

मानव को प्राप्त हुए आत्मकल्याण के सुअवसर को

प्रतिपादित करते हुए शास्त्रकार कहते है –

भूतेषु जगमत्व तस्मिन् पञ्चेन्द्रियत्वमुत्कृष्टम्।
तस्मादपि मानुष्य मानुष्येऽप्यार्यदेशश्च ।।1।।
देशे कुल प्रधान कुले प्रधाने जातिरुत्कृष्टा।
जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बल विशिष्टतम्।।2।।
भवति बले चायुष्क प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानम्।
विज्ञाने सम्यक्त्व, सम्यक्त्वे शीलसम्प्राप्ति ।।3।।
एतत्पूर्वश्चाय समासत मोक्षसाधनोपाय ।
तत्र च बहु सम्प्राप्त भवद्धिरल्पञ्च सम्प्राप्यम्।।4।।

अनन्त अतीतकाल मे स्थावर के रूप मे अपरिमित काल तक रहने के पश्चात् अनन्त पुण्यराशि के प्राग्भार से त्रस पर्याय की प्राप्ति होती है। त्रसत्त्व मिल जाने के पश्चात् भी पञ्चेन्द्रियत्व की प्राप्ति, तदनन्तर मनुष्यत्व, आर्यदेश, उत्तमकुल, उत्कृष्ट जाति, सुन्दर रूप, समृद्धि, विशिष्टबल, दीर्घायु, ज्ञान, सम्यक्त्व (दर्शन) और चारित्र की प्राप्ति होना उत्तरोत्तर सुदुर्लभ है। इन दुर्लभ सामग्रियो मे से बहुत सी सामग्रिया सद्भाग्य से आपको मिली हुई है। थोडी ही सामग्री प्राप्त करना शेष है। अतएव विशेष पुरुषार्थ द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। ससार–समुद्र का बहुत सारा भाग पार किया जा चुका है। किनारा समीप ही है। अतएव अब प्रमाद करना उचित नहीं पूरी शक्ति के साथ छलाग लगाने की आवश्यकता है सुदुर्लभ सामग्रियो की सफलता इसी मे हैं, अन्यथा हुई नाव भी डूब सकती है। यदि प्रमाद का अवल

तो इतनी दुर्गम–घाटियो को पार करने का परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। अतएव इस अवसर का अत्यन्त सावधानी के साथ लाभ लेना चाहिए।

वैज्ञानिक मार्ग -

यह भलीभाति सिद्ध है कि आत्मा की समग्र उपलब्धिया मानव–भव मे ही प्राप्त होती है। इसके छूट जाने के पश्चात् आत्मा का अवस्थान मात्र रहता है। वहा कोई नवीन उपलब्धि नही होती। इसलिए मानव–भव मे प्राप्त मार्ग को वैज्ञानिक मार्ग की सज्ञा दी गई है। वैज्ञानिक मार्ग का तात्पर्य भौतिक विज्ञान के मार्ग से नही है। लेकिन भौतिक प्रयोगशालाओ मे जैसे उपलब्धि प्रत्यक्ष की जाती है वैसे ही आध्यात्मिक जीवन की पयोगशाला मे जो कुछ भी आन्तरिक उपलब्धिया साधक को प्राप्त होती है, उनको वह प्रत्यक्ष मे देखता हुआ चला जाता है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धिया बाह्य होती है अतएव अन्य व्यक्ति उन्हे देख सकते है। जबकि आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धिया आन्तरिक होती है अतएव अन्य व्यक्ति उन्हे नही देख पाते। साधक स्वयमेव उनका अनुभव करता चला जाता है। आध्यात्मिक शक्ति का स्वरूप ही इस ढग का है कि वह बाहर निकाल कर नही बताई जा सकती। बडे से बडा विद्वान् अपनी विद्वता के अनुभव को हथेली पर निकाल कर नही दिखा सकता। आध्यात्मिक जीवन की स्थिति भी ऐसी ही है। यदि मानव आध्यात्मिक जीवन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करे और प्रारम्भ

अपनी साधना के सूत्र को सक्रिय बनावे तो कठिनाइयो

के बावजूद वह एक दिन सफलता की भूमिका पर अवश्य पहुच जाता है।

पुरुषार्थ बनाम नियतिवाद -

कभी-कभी इधर-उधर के विचारो को सुनकर मानव यह सोचने लगता है कि जो होनहार है, वही होता है। मानव के प्रयत्न से कुछ नहीं होता। जैसा कि कहा गया है -

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थ
सोऽवश्य भवति नृणा शुभोऽशुभो वा।
भूताना महती कृतेऽपि हि यत्ने,
नाभाव्य भवति न भाविनोऽस्ति नाश ।।

अर्थात्- नियति के द्वारा जो भी शुभ या अशुभ मनुष्यो को प्राप्त होने वाला होता है, वह अवश्य प्राप्त होता है। प्राणी के बहुत यत्न करने पर भी जो होनहार नहीं है, वह नहीं हो सकता। जो होनहार है, उसका नाश नहीं होता। और भी कहा है -

नियतेन रूपेण सर्वे भावा भवन्ति यत्।
ततो नियतिजा ह्येते तत्स्वरूपानुवेधत ।।
यद् यदैव यतो यावत्, तत्तदैव ततस्तथा।
नियत जायते न्यायात् क एना बाधितु क्षम ।।
— शास्त्र वार्ता

सब पदार्थ नियति के अधीन है। जो जिस

आवश्यक है । यदि आप उसे दिग्विजयी वीर बनाना चाहते है तो प्रारम्भ से ही उसके लिए व्यायाम आदि के सस्कार और साधन अपेक्षित होगे । यदि अपनी सन्तति को आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहते है तो उसे बचपन से ही वैसे सस्कार देने होगे । जीवन एक उम्र तक मोड ले सकता है । उसके पश्चात् उसे मोडना कठिन और दुष्कर होता है ।

मानव कभी–कभी कल्पना करता है कि कलियुग बडी विचित्र रीति से चल रहा है । इस समय कोई अवतारी पुरुष क्यो नही पैदा होता है जो अज्ञान की परम्परा को समाप्त करे ? यदि सचमुच किसी अवतारी पुरुष की आवश्यकता को आप महसूस करते है तो मै यह स्पष्ट राय देना चाहूँगा कि अवतारी पुरुष यकायक आसमान से टपकने वाला नही है । इन बालको मे से ही कोई सस्कारी बालक अवतारी पुरुष की कोटि मे पहुच सकता है । शकराचार्य और आचार्य हेमचन्द्र जैसे दिग्गज और समर्थ विद्वान् बाल्यकाल के सस्कारो के फलस्वरूप ही जगतीतल मे प्रसिद्ध हुए है । अतएव बालको के जीवन–निर्माण के प्रति सतर्कता और सावधानी रखने से अवश्य ही कोई ऐसी प्रतिभा उभर कर सामने आ सकती है जो अवतारी पुरुष का काम कर सके ।

सस्कारो का महत्त्व

कोमल वय मे पडे हुए सुसस्कार और कुसस्कार कितने प्रभावशाली होते है, इसको समझने के लिए एक उपयोगी रूपक इस प्रकार है –

को शात करने के लिए उसने ऋषि से पूछा कि 'ऋषिवर ! दोनो तोते की वाणी मे इतना अन्तर होने का क्या कारण है ?'

ऋषि ने उत्तर दिया, 'राजन् ! वह तोता लुटेरो की सगति मे रहा और लुटेरो ने उसे ऐसे ही सस्कार दिये। लुटेरे उससे गुप्तचर का काम लेते है। उसकी सूचना पाकर वे पथिको को लूटते है। तुम सुज्ञ हो, अतएव वहा से बच निकले। यह तोता ऋषियो के सम्पर्क मे रहता है, इसे सुन्दर सस्कार दिये जात है। यही कारण है कि यह अपने यहा आये हुए का 'स्वागतम् सुस्वागतम्' कह कर स्वागत करता है।

राजा ने भी प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया कि सस्कारो के आधार पर जीवन का निर्माण होता है। कोमल वय के बालको को जैसे सस्कार मिलेगे, उसी के अनुसार ही उनका जीवन बनेगा। अतएव आप अपने बालको को सुयोग्य बनाना चाहते है तो आपको इस विषय मे सतर्क रहना होगा कि बालक कैसे सस्कार पा रहे है ? उनके आसपास का वातावरण कैसा है ? वे किसके ससर्ग मे रहते है ? आप उन्हे जैसा बनाना चाहते है, उसके अनुकूल वातावरण और साधन–सामग्री उन्हे उपलब्ध है क्या ? कही वे अनिष्ट तत्त्वो के चगुल मे नही फस रहे है ? इन सब बातो पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, तभी बालको के जीवन का सही–सही निर्माण हो सकता है।

अयवता मुनिवर

पर्युषण पर्व के इन दिनो मे अन्तगड सूत्र के माध्यम से

अभी आपने अयवता मुनि के सम्बन्ध मे सुना है। इन बाल मुनि को जीवन के उगते प्रभात मे ही आध्यात्मिक विभूतियो का अलौकिक सम्पर्क प्राप्त हुआ, जिसके कारण उनकी जीवन–नौका ससार–सागर से पार हो गई। कोमल वय के इस बालक को आरभिक स्थिति मे ही आध्यात्मिक सस्कार मिले जो उत्तरोत्तर विकसित होते गये। फलस्वरूप इसी भव मे उन्होने आत्मा की सर्वोच्च्य स्थिति को प्राप्त कर लिया। अयवता मुनिवर का चरित्र, सस्कारो के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाला ज्वलत उदाहरण है। बालमुनि अयवता ने न केवल बालसुलभ क्रीडा के कारण वर्षा के पानी मे अपनी नौका ही तिराई अपितु उन्होने अपनी जीवन–नौका भी ससार–सागर से पार कर ली। इसीलिए इस प्रसग पर सत जन इस भजन की पक्तियो का उच्चारण करते है –

> एवता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर मे।।टेर।।
> पोलासपुरी नगरी को राजा विजयसेन है नाम।
> श्री देवी अगे ऊपन्यासरे एवता कुमार रे।।एवता।।

बालमुनि एवता ने वर्षा के बहते हुए पानी मे अपना पात्र तैराया और कहने लगे–'मेरी नाव तिरी, मेरी नाव तिरी'। यद्यपि बालमुनि का यह कार्य सयम की मर्यादा के बाहर था परन्तु बचपन तो बचपन ही होता है। सर–सरी तौर पर एव स्थूल–दृष्टि से यह कार्य सयम के नियमो के प्रतिकूल लगता है परन्तु सूक्ष्मदर्शी अनन्त–ज्ञानी, सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने इसे भावी सत्य के रूप मे निरूपित किया। उन्होने कहा– यह ससार एक प्रवाह है। उसमे

ससारवर्ती जीव बह रहे है। यह बालमुनि चरम–शरीरी जीव है। इसके मुख से भावी सत्य प्रकट हुआ है। इसकी नाव सचमुच तिर गई है। यह इस दुस्तर ससार–प्रवाह को तैरने वाला है।'

उक्त प्रसग अन्तगड सूत्र मे वर्णित नही है किन्तु भगवती सूत्र मे इसका उल्लेख है। अन्तगड मे केवल उनकी बालवय का उल्लेख है। शास्त्रीय सन्दर्भो से विदित होता है कि प्राचीन काल मे आठ वर्ष का हो जाने के बाद ही बालक को शिक्षा–दीक्षा के योग्य माना जाता था। आज तो स्थिति बदली हुई है। वर्तमान शिक्षा–पद्धति और उसके नियमोपनियमो के कारण आजकल बच्चो को स्कूल भेजने मे शीघ्रता की जाती है। बच्चा 4–5 वर्ष का हुआ कि उसे स्कूल भेजने की शीघ्रता माता–पिता करते है। वे सम्भवत यह सोचते है कि बच्चा जल्दी लिख–पढ कर होशियार हो जाए और धन कमाने लगे।

कोमल मस्तिष्क पर शिक्षा का भार

प्राचीन काल के सुज्ञ शिक्षक एव सरक्षक बालक के हित की दृष्टि से व्यवस्था करते थे। बालक के मस्तिष्क के कोमल तन्तु अध्ययन करने मे सक्षम न बन जाए तब तक वे बालक पर शिक्षा का बोझ नही डालते थे। योग्य वय मे, योग्य समय पर किया गया कार्य फलीभूत हुआ करता है। अपरिपक्व स्थिति मे डाला गया भार प्रतिभा को कुण्ठित कर देता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसका प्रारम्भ सुधर जाता है उसका अगला जीवन भी सुधर जाता है। जिसका प्रारम्भ बिगड जाता है उसकी सारी जिन्दगी बिगड जाती है। हलुवे की चासनी

प्रारम्भ मे बिगड गई तो हलुवा बिगड जायेगा। वैसे ही जीवन की चासनी आरम्भ मे बिगड गई तो पूरी जिन्दगी बिगड जाती है। अतएव आरम्भिक अवस्था मे विशेष ध्यान देना चाहिए।

प्राचीन काल मे मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सस्कारी बनाना होता था, धनोपार्जन का नही। आज के युग मे धन की लालसा के कारण विचित्र स्थिति बन रही है। आज के बालक धन कमाने की मशीन जल्दी से जल्दी कैसे बने, इसी भावना से उन्हे कोमल वय मे स्कूलो मे प्रविष्ट कराया जाता है। वहा उन पर इतना भार लाद दिया जाता है कि उनका कोमल मस्तिष्क क्षत–विक्षत हो जाता है। कोमल वय मे अधिक भार डालना उनके जीवन को दबोचना है। माता–पिता को इस विषय मे गम्भीरता से सोचना चाहिए।

अयवन्ता कुमार 8 वर्ष की वय मे पहुच चुका था त्दपि उसे स्कूल मे प्रविष्ट नहीं कराया गया था। वह छोटे बालको के साथ खेल रहा था। उसकी सहज बुद्धि तीक्ष्ण थी। उसको बचपन मे कैसे सस्कार मिले तथा पूर्वभव के सस्कार क्या काम करते है, निमित्त पाकर वह कैसे चमक गया, इसी विषय पर कुछ विशेष प्रकाश डालना चाहता हूँ।

बेले बेले करे पारणा, गणधर पदवी पाया।
भगवता की आज्ञा लेकर गौतम गोचरी आया रे,
अयवता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर मे।।

प्रभु महावीर राजकुल मे जन्म लेकर भी समग्र मानव जाति का कल्याण करने के लिए निग्रर्न्थ श्रमण और दीर्घ तपस्वी बने। उन्होने परिपूर्ण केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त कर चतुर्विध सघ की स्थापना की और भव्यजनो को मोक्ष का मार्ग बताया। उस समय प्रभु महावीर पोलासपुर नगर के बगीचे मे पधारे हुए थे। उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधर बडे प्रतिभाशाली विद्वान् थे। वे जाति के ब्राह्मण थे, वेदो के पारगामी ज्ञाता थे परन्तु प्रभु महावीर के उपदेशो से प्रभावित होकर वे उनके शिष्य बन गये। वे अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण प्रभु महावीर के दिव्य सदेश को साकार रूप देकर चल रहे थे। साधु–जीवन की परम उत्कृष्ट साधना के साथ भिक्षावृत्ति के लिए वे स्वय पधारते थे। उन्होने प्रभु से विधिवत आज्ञा ली और भिक्षा के लिए वे नगर मे पधारे। सयोगवश वे उसी स्थान पर पधारे जहा वे बालक खेल रहे थे।

खेल रहा था खेल कुवर जी देख्या गौतम कुमार।
घर घर माहि फिरे हिडता, पूछे इतरी बात हो,
अयवन्ता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर मे।।

सयमी जीवन के भव्य गुणो से परिपूर्ण गौतम गणधर समभाव के साथ यतनापूर्वक दृष्टिपूत मार्ग पर चले आ रहे थे। एक हाथ मे झोली दूसरे हाथ मे रजोहरण धारण करते हुए वे भिक्षा के लिए कभी किसी घर मे और कभी अन्य घर मे प्रवेश करते थे। बालको की टोली क्रीडा मे लगी हुई थी। उस मार्ग

से सैकडो व्यक्ति आते–जाते रहे होगे किन्तु उनकी तरफ उन बालको का ध्यान नहीं गया। बच्चो को खेल बहुत प्रिय होता है। वे खेल छोडना पसन्द नहीं करते । खाना–पीना छोड देगे परन्तु खेल नहीं छोडेंगे। लेकिन सयोग से या पूर्व सस्कारो के कारण अयवन्ताकुमार के मन मे गौतम गणधर को देखकर अनूठे ही भाव जागृत हुए। वह खेल से अलग हट कर गौतम स्वामी के सम्मुख आया और उनसे बाते करने लगा। लोकोक्ति है कि पूत के पाव पालने मे दृष्टिगत होते हैं। बडे–बडे व्यक्ति महात्माओ से बात करने मे सकोच का अनुभव करते है परन्तु वह छोटा बालक निस्सकोच होकर गौतम गणधर से बाल–सुलभ उत्सुकता से प्रेरित होकर वार्त्तालाप करने लगा।

अयवन्त-गौतम-सवाद

अयवता कुमार ने गौतम गणधर से पूछा–'आप कौन है ? कहा जा रहे है ? घर–घर क्यो घूम रहे है ?'

श्री गौतम स्वामी विशिष्ट ज्ञानी थे। वे अनुभवी और विचक्षण थे। छोटे बालक के मुह से ऐसे प्रश्न सुनकर वे गद्गद् हो गये। उन्होने जान लिया कि यह बालक सस्कार–सम्पन्न और होनहार है। उन्होने कहा, 'कुमार ! हम साधु है। भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे है। हम अपने लिए भोजन बनाते नहीं। हमारे लिए कोई भोजन बनाकर दे तो हम लेते नहीं । लोग अपने घरो मे अपने लिए जो भोजन बनाते है उसी मे से थोडा–थोडा बिना

प्रभु महावीर राजकुल मे जन्म लेकर भी समग्र मानव जाति का कल्याण करने के लिए निग्रर्न्थ श्रमण और दीर्घ तपस्वी बने। उन्होने परिपूर्ण केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त कर चतुर्विध सघ की स्थापना की और भव्यजनो को मोक्ष का मार्ग बताया। उस समय प्रभु महावीर पोलासपुर नगर के बगीचे मे पधारे हुए थे। उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधर बडे प्रतिभाशाली विद्धान् थे। वे जाति के ब्राह्मण थे, वेदो के पारगामी ज्ञाता थे परन्तु प्रभु महावीर के उपदेशो से प्रभावित होकर वे उनके शिष्य बन गये। वे अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण प्रभु महावीर के दिव्य सदेश को साकार रूप देकर चल रहे थे। साधु–जीवन की परम उत्कृष्ट साधना के साथ भिक्षावृत्ति के लिए वे स्वय पधारते थे। उन्होने प्रभु से विधिवत आज्ञा ली और भिक्षा के लिए वे नगर मे पधारे। सयोगवश वे उसी स्थान पर पधारे जहा वे बालक खेल रहे थे।

खेल रहा था खेल कुवर जी देख्या गौतम कुमार।
घर घर माहि फिरे हिडता, पूछे इतरी बात हो,
अयवन्ता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर मे।।

सयमी जीवन के भव्य गुणो से परिपूर्ण गौतम गणधर समभाव के साथ यतनापूर्वक दृष्टिपूत मार्ग पर चले आ रहे थे। एक हाथ मे झोली दूसरे हाथ मे रजोहरण धारण करते हुए वे भिक्षा के लिए कभी किसी घर मे और कभी अन्य घर मे प्रवेश करते थे। बालको की टोली क्रीडा मे लगी हुई थी। उस मार्ग

से सैकडो व्यक्ति आते–जाते रहे होगे किन्तु उनकी तरफ उन बालको का ध्यान नहीं गया। बच्चो को खेल बहुत प्रिय होता है। वे खेल छोडना पसन्द नहीं करते । खाना–पीना छोड देगे परन्तु खेल नहीं छोडेंगे। लेकिन् सयोग से या पूर्व सस्कारो के कारण अयवन्ताकुमार के मन मे गौतम गणधर को देखकर अनूठे ही भाव जागृत हुए। वह खेल से अलग हट कर गौतम स्वामी के सम्मुख आया और उनसे बाते करने लगा। लोकोक्ति है कि पूत के पाव पालने मे दृष्टिगत होते है। बडे–बडे व्यक्ति महात्माओ से बात करने मे सकोच का अनुभव करते है परन्तु वह छोटा बालक निस्सकोच होकर गौतम गणधर से बाल–सुलभ उत्सुकता से प्रेरित होकर वार्त्तालाप करने लगा।

अयवन्त-गौतम-सवाद

अयवता कुमार ने गौतम गणधर से पूछा–'आप कौन है ? कहा जा रहे है ? घर–घर क्यो घूम रहे है ?'

श्री गौतम स्वामी विशिष्ट ज्ञानी थे। वे अनुभवी और विचक्षण थे। छोटे बालक के मुह से ऐसे प्रश्न सुनकर वे गद्‌गद् हो गये। उन्होने जान लिया कि यह बालक सस्कार–सम्पन्न और होनहार है। उन्होने कहा, 'कुमार ! हम साधु है। भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे है। हम अपने लिए भोजन बनाते नहीं। हमारे लिए कोई भोजन बनाकर दे तो हम लेते नही । लोग अपने घरो मे अपने लिए जो भोजन बनाते है उसी मे से थोडा–थोडा बिना

किसी को कष्ट पहुचाए हम ग्रहण करते है। इसलिए हम एक घर से दूसरे घर भिक्षा के लिए भ्रमण करते है।'

अयवन्तकुमार–'यदि ऐसा है तो चलिए मेरे साथ। मै आपको भोजन दिलाता हूँ।' ऐसा कह कर उसने गौतम स्वामी की अगुली पकड ली और उन्हे अपने आवास की ओर चलने का आग्रह करने लगा।

गौतम स्वामी ने उसे कहा कि अगुली छोड दो। परन्तु बालक क्या समझे मुनि की मर्यादा और उनके कल्प को ? सतो के चरणो मे नमस्कार किया जा सकता है किन्तु उनके अन्य अगो को छूना नही चाहिए। सत भी गृहस्थ के किसी अग को नही छूते। शास्त्र मे इसका सुन्दर निरूपण किया गया है।

अयवताकुमार गौतम स्वामी के साथ अपने आवास की ओर बढ रहा था। उधर उस अनूठे लाल को जन्म देने वाली माता भोजन का समय हो जाने से अपने लाल की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी दृष्टि दरवाजे की ओर लगी हुई थी। सहसा उसने देखा कि अयवता कुमार एक महात्मा के साथ चला आ रहा है। महारानी बहुत प्रसन्न हुई। महारानी होते हुए भी उसके दिल मे सतो के प्रति अति आदर और सद्भाव था। तुच्छ प्रकृति के व्यक्ति वैभव पाकर इतने उन्मत्त हो जाते है कि वे सतो के महत्त्व को नही समझते। इतना ही नही, वे अन्य व्यक्तियो के प्रति भी भद्र व्यवहार नही करते।

सत कल्पतरु है

अयवताकुमार की माता महारानी श्रीदेवी यह जानती थी कि सत ससार के समस्त पदार्थों का परित्याग करके चलते है। वे कनक और कामिनी के त्यागी होते है। वे कल्पतरु के तुल्य है। जिसके घर पर ऐसे जगम कल्पतरु का पदार्पण होता है, वह घर धन्य हो जाता है, उसके जीवन का अभ्युदय होने लगता है। मेरे घर पर आज सत–महात्मा पधार रहे हैं, मेरा लाल उन्हे साथ लेकर आ रहा है, यह कितने सौभग्य की बात है। वह बोल उठती है –

अहो बालुडा महा पुण्यवता भली जहाज घर लाई।
हर्ष भाव से हाथो से बहरावे अन्न और पानी जी।।
अयवता मुनिवर नाव तिराइ बहता नीर मे।।

माता कहने लगी–'अहो बालुडा ! तुमने बहुत अच्छा काम किया। तुमने असीम पुण्य का सचय किया। तुम्हारा और हमारा अहोभाग्य है जो तरण–तारण जहाज को घर ले आया। तुम्हारा जन्म सफल हुआ।'

माता को हर्षित जानकर कुमार भी फूला नहीं समाया। उसे अनुभव हुआ कि मै अच्छा काम करके आया हूँ। माता अनुमोदना से बालक का उत्साह द्विगुणित हो जाता है। गौतम स्वामी को भावना के साथ वन्दन किया और ले जाकर निर्दोष अन्न–जल भक्तिपूर्वक बहराया

भिक्षा ग्रहण कर वहा से निकल पडे। महारानी ने पुन उन्हे वन्दन किया और कुछ दूरी तक उन्हे पहुचाने आई। कुमार भी गौतम स्वामी के साथ जाने लगा।

लारे लारे चाल्यो बालूडो देख्या भाग्य सौभाग्य।
भगवता की वाणी सुन नै मन आयो वैराग्य जी।।
अयवता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर मे।।

अयवता कुमार की भावना का वेग तीव्र गति से बढ रहा था। माता द्वार तक पहुचाने जाती है। किन्तु कुमार उन सत–महात्मा के साथ आगे बढता जा रहा है। माता को ज्ञात है कि उसका लाल भूखा है, वह खेल मे रम रहा था, भोजन का समय है फिर भी वह महात्मा के साथ जा रहा है। माता ने उसको रोकने की कोशिश नही की। वह जानती थी कि बचपन मे ऐसे सस्कार पुण्य की प्रबलता से ही प्राप्त होते है।

गौतम स्वामी के साथ अयवता कुमार महावीर स्वामी के समीप पहुचा। गौतम स्वामी का अनुकरण करते हुए उसने भी महावीर स्वामी को नमस्कार किया। वह हाथ जोडकर प्रभु के सामने बैठ गया। प्रभु सर्वज्ञ–सर्वदर्शी थे। उन्होने कुमार के भविष्य को जान लिया था। उस होनहार कुमार ने प्रभु से प्रार्थना की कि–'भगवन् ! मुझे उपदेश सुनाइये।'

आप कल्पना करते होगे कि आठ वर्ष का बालक उपदेश मे क्या समझता होगा ? उसमे धर्मोपदेश की जिज्ञासा कैसे हो

सकती है ? सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु महावीर जैसे सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी ने आठ वर्ष के बालक को क्या उपदेश दिया होगा ? उत्तर मे मै कहना चाहूँगा कि जो बाते हमे सामान्य से विलक्षण प्रतीत होती है वे पूर्व के प्रबल सस्कारो की प्रतीति कराती हैं। पूर्व के सस्कार बहुत प्रबल होते है। वे निमित्त पाकर जब जागृत होते हैं तो उनमे सामान्य बातो से विलक्षणता और विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। कई छोटे बालको मे पाई जाने वाली अद्‌भुत प्रतिभा इस बात का प्रमाण है। कई बालको मे वयस्को की अपेक्षा विशेष जिज्ञासा दृष्टिगोचर होती है। कई बार मैं देखता हूँ कि जब तात्त्विक गहराई की बात की जाती है तब कई वयस्क नींद लेने लगते हैं लेकिन बालक एकाग्र मन से उसे सुनने-समझने का प्रयत्न करते है। यह पूर्व सस्कार और भावी होनहार का परिणाम समझना चाहिए। अयवता कुमार के पूर्व सस्कार और उसके उज्ज्वल होनहार के कारण उसे ऐसी तत्त्व-जिज्ञासा होना सभावित है।

उपदृष्टा समदृष्टा होता

हितोपदेश वीतराग देव समदर्शी होते हैं। वे सबको समान रूप से हितोपदेश सुनाते हैं। वे आशसारहित होते है अतएव जिस भावना से सम्राट चक्रवर्ती राजा और श्रीमन्तो को उपदेश देते हैं उसी भावना से तुच्छ, दीन-हीन अनाथ को भी धर्मोपदेश प्रदान करते हैं। उनके यहा सपन्न-विपन्न का कोई भेद नहीं होता, स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता, बाल,युवा,वृद्ध का भेद नही

होता, गुणी–अगुणी का भेद नही होता, पुण्यशाली या पुण्यहीन का भेद नही होता। वे सबको एकान्त हितकारी उपदेश समभाव से प्रदान करते है। आगम मे कहा है–

'जहा पुण्णास्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णास्स कत्थइ।।'

–आचाराग सूत्र।

उपदेष्टा अनुग्रह बुद्धि से जैसे पुण्यशाली सत्ता–सम्पन्न का उपदेश देते है वैसे ही तुच्छ–रक को भी उपदेश देते है। इसी हितकर बुद्धि से प्रभु महावीर ने अयवता कुमार को सामयिक एव बाल–बुद्धिगम्य उपदेश प्रदान किया।

प्रभु महावीर की वाणी ने कोमल–हृदय अयवता कुमार के निर्मल हृदय पर चमत्कारिक प्रभाव डाला। वह कहने लगा– ' प्रभो ! मै अपने जीवन निर्माण की दृष्टि से आपके चरणो मे उपस्थित होना चाहता हूँ। मै आपके चरणो की शरण मे आकर अनगार बनना चाहता हूँ।' प्रभु ने कहा–'जहा सुह देवाणुप्पिया।' (जैसा सुख हो वैसा करो।')

माता-पुत्र सवाद

अयवता कुमार वहा से लौट कर अपनी माता के पास आया। वह बहुत प्रसन्न और बहुत प्रोत्साहित हो रहा था। उसने माता से कहा– 'माता ! मैने प्रभु महावीर के दर्शन किये।'

माता–लाल ! तुम्हारे नेत्र पवित्र हुए। तुम धन्य हो गये।

कुमार–माता ! मैने प्रभु की वाणी–सुधा का पान किया।

माता–लाल ! तुम्हारे कान पवित्र हो गए। वीतराग–वाणी का श्रमण करना बडा दुर्लभ है।

कुमार–माता ! मैने प्रभु की वाणी को हृदय मे धारण किया।

माता–लाल ! तुम्हारा हृदय निर्मल बन गया। तुम्हारा जीवन धन्य हो गया।

कुमार–माता ! मै प्रभु की वाणी को हृदय तक ही नही रखना चाहता। उसे क्रियान्वित भी करना चाहता हूँ।

माता–लाल ! यह तो बहुत ही उत्तम है। अपने घर मे वे सब साधन है। जो भी नेक और शुभ कार्य तुम करना चाहो, खुशी से करो।

कुमार–माता ! मैं घर–बार छोड कर अनगार बनना चाहता हूँ।

यह सुन कर माता को हॅसी आ गई। यदि अन्य कोई माता होती तो उसकी दशा अन्य ही प्रकार की होती। माता ने कहा –

तू काई जाणे साधुपणा मे, बाल अवस्था थारी,
उत्तर दीधो ऐसो कवर जी मात कहे बलिहारी जी।

एवता मुनिवर नाव तिराई वहता नीर मे।

हे लाल ! तू साधुपने को क्या समझता है ? तेरी अवस्था बहुत छोटी है। साधुपना बच्चो का खेल नही है। तेरी खेलने की अवस्था है। अतएव खेलो और आनन्द से रहो।

कुमार–माता ! मैने प्रभु के मुखारविन्द से ससार का सार जान लिया है।

'ज चेव जाणामि त चेव नो जाणामि'

(मै कुछ जानता भी हूँ और कुछ नही भी जानता हूँ।)

माता–लाल ! यह क्या पहेली बुझा रहे हो ?

कुमार–माता ! मै यह जानता हूँ कि मानव–मात्र मरने वाला है। जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा। लेकिन कब मरेगा, कैसे मरेगा, यह मै नही जानता लेकिन इतना जानता हूँ कि जीव अपने शुभाशुभ कर्मो से चतुर्गति रूप ससार मे भ्रमण करता है। माता ! जीवन का भरोसा नही है। कौन जानता है कि पहले कौन मरेगा ? पीछे कौन मरेगा ? इसलिए मै आपकी आज्ञा लेकर अनगार बनना चाहता हूँ ताकि मृत्यु पर विजय पा सकू।

माता–लाल ! तुमने जीवन का मक्खन पा लिया। तत्त्वज्ञान का मर्म पहचान लिया परन्तु अनगार बनने योग्य तुम्हारी अवस्था नही है। परिपक्क स्थिति आने पर उचित काल मे तुम अपने सकल्प को कार्यरूप दे सकते हो। अभी वह अवसर नही है।

इस प्रकार माता ने अयवता कुमार को समझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु कुमार अपने सकल्प पर अटल और अविचल रहा। उसे प्रलोभन दिया गया। राजसिहासन पर आसीन किया गया। सिहासन पर आरूढ होकर भी उसने कहा–'मैं अब राजाओ का राजा हूँ। मेरी आज्ञा है कि श्री भडार से तीन लाख सोनैया निकाल कर सयम के उपकरण मगवाइये और दीक्षा–विधि सम्पन्न करिये।'

अन्ततोगत्वा माता–पिता ने अपने कलेजे के टुकडे को प्रभु के चरणो मे समर्पित किया और कहा– 'भते ! यह शिष्यभिक्षा ग्रहण कीजिये और इसे इस योग्य बनाइये कि यह पुन किसी माता की कुक्षि मे जन्म न ले। यह जन्म, जरामृत्यु पर विजय प्राप्त कर शाश्वत स्वरूप को पा सके।'

प्रभु ने अयवता कुमार को प्रव्रज्या प्रदान की। वह अयवतामुनि बन गया। साधु–जीवन की प्रक्रिया सीखने लगा। थोडे ही दिनो के बाद शौच आदि कार्य हेतु स्थविरो के साथ बाहर जाने का प्रसग आया। थोडे समय पूर्व वर्षा हुई थी। उसका पानी बह रहा था। बालमुनि शौच से निवृत्त होकर बहते हुए पानी को देखकर बाल–सुलभ क्रीडावश उसमे पात्री तेरा कर बोलने लगे–'मेरी नाव तिरी मेरी नाव तिरी। स्थविर मुनियो ने वहा आकर यह क्रीडा देखी तो उन्होने समझाया कि करना मुनि का कल्प नही है। बालमुनि ने पुन ऐसा न आश्वासन दिया। स्थविरो ने प्रभु महावीर को घटित

हाल सुनाया तो प्रभु महावीर ने फरमाया–'स्थविरो ! यह चरम शरीरी जीव है। तुम इसकी हीलना–निन्दा मत करो। यह इसी भव मे सिद्ध–बुद्ध और मुक्त होगा।'

स्थविरो ने प्रभु के वचनो को शिरोधार्य किया। अयवतामुनि ने भी सयम की उत्कृष्ट साधना की और जिस कार्य के लिए प्रव्रजित हुए थे, उसे सिद्ध कर लिया। न केवल उन्होने वर्षा के बहते नीर मे नाव तिराई अपितु ससार के दुस्तर प्रवाह से आत्मा की नौका पार कर ली।

बहुत से भाई–बहिन यह कहते सुने जाते है कि छोटे बच्चो को दीक्षित क्यो किया जाता है ? हमारा प्रयत्न हर किसी को दीक्षित करने का नही होता। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और योग्यता देख कर दीक्षित करने का प्रयत्न होता है। योग्य व्यक्ति ज्ञात हो तो किसी भी वय मे दीक्षा देने का शास्त्रीय विधान है। छोटे बच्चो को दीक्षित करते समय विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए। फिर भी इतना तो मानना ही पडेगा कि कोमल वय मे दिये गये सस्कार विशेष प्रभावपूर्ण होते है। मदालसा ने अपने बच्चो को प्रारम्भ से विरक्ति की ओर लगाया। बडे–बडे महापुरुष बचपन के सस्कारो से ही बडे बन सके है।

पर्युषण पर्व का आज सातवा दिन है। कल परीक्षण का क्षण है। आपने पूरी तैयारी कर ली होगी। कौन उत्तीर्ण होता है और कौन अनुत्तीर्ण रहता है, यह परसो प्रतीत हो जायेगा। जिनके प्रति कलुषित भाव बने है, उनको धो डाला जायगा तो

उत्तीर्णता प्राप्त होगी। यदि कालुष्य की पोटली को पकड कर रखा गया तो असफलता ही हाथ लगेगी।

जीवन को भव्य और दिव्य बनाने का सुन्दरतम सुयोग आपको मिला है। अयवन्ता कुमार की तरह आप भी अपनी जीवन नौका को पार उतार सकते है। आशा है, आप जीवन–निर्माण की कला सीख कर जीवन को दिव्य और भव्य गुणो से अलकृत करेगे। धर्म के मार्ग पर चल कर जीवन को मगलमय बनाएगे।

देशनोक
8975

आत्मा का अन्तर्नाद : 'खामेमि सव्वे जीवा'

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो, वदत पाप पुलाय।
प्रभुता, त्यागी राजनी हो, लीधो सयम भार।
निज आतम–अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार ।श्री ।

श्री सुविधिनाथ प्रभु के पद–पद्मो मे प्रार्थना के माध्यम से भावाञ्जलि समर्पित की गई है। लगातार कई दिनो से श्री सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना की जा रही है, क्योकि उन परम कृपालु परमात्मा ने जगजीवो को कल्याण की, सुखशान्ति की सुविधि बताई है। उनकी बताई हुई सुविधिवीथिका पर चल कर आत्मा परम और चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर सकती है। ऐसे परमात्मा के चरणो मे प्रतिदिन प्रार्थना करने का महत्त्वपूर्ण प्रसग प्राप्त होता है तो अन्तरतर का कण–कण विकसित और प्रफुल्लित हो उठता है। आत्मा का परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्रार्थना परमात्मा के प्रति आत्मा के समर्पण का प्रतीक है।

पूर्व मे अनेक बार प्रतिपादित किया जा चुका है कि यह आत्मा चौरासी लाख जीव–योनियो मे परिभ्रमण करता है परन्तु मानव–तन के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी परम विश्राम की विधि उसे सुलभ नहीं है। आत्मविकास का मानव जीवन के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध जुडा हुआ है। जितना भी विकास दृष्टिगत होता है–चाहे वह भौतिक क्षेत्र मे हो अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र मे, वह मानव–तन से ही सम्भव हो सका है। अन्य जीवो मे विकास का यह अवसर नहीं है। ऐसा सुन्दरतम मानव–जीवन जिन्हे उपलब्ध है, वे इस सम्बन्ध मे समग्र दृष्टिकोण से सोचे कि किस प्रकार वे अपने जीवन का सर्वोच्च विकास उपलब्ध कर सकते है।

शान्ति की दुर्लभता

आज विश्व मे भौतिक विज्ञान का विस्तार हो रहा है। नित्य नवीन–नवीन भौतिक सुख–सुविधाओ के साधन उपलब्ध हो रहे है। यातायात के साधन इतने तीव्रगामी और दूरगामी हे कि दुनिया की दूरी दूर होती जा रही है, वह सिमटती जा रही है। विश्व के एक छोर से दूसरे छोर पर अल्प समय मे ही पहुँचा जा सकता है, एक स्थान की वस्तुए आसानी से सर्वत्र उपलब्ध हो सकती है। दूर–दूर के शब्दो का आदान–प्रदान कुछ ही क्षणो मे हो सकता है। ये सब उपलब्धिया भौतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है परन्तु इन सबके बावजूद शान्ति सुलभ नही हुई है। ज्यो

सुख–सुविधा के भौतिक साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं त्यो–त्यो शान्ति विलुप्त होती जा रही है। साधनो की वृद्धि के साथ साथ अशान्ति की वृद्धि होती जा रही है। दुनिया की दूरी मिटने के साथ ही साथ दिलो की दूरी बढती चली जा रही है। इसका अर्थ यह है कि भौतिक साधनो की अभिवृद्धि शान्ति की विधि नही है। शान्ति की विधि तो वही है, जो सुविधिनाथ परमात्मा ने बताई है।

आप और हम प्रत्यक्ष देख रहे है कि जिनके पास भौतिक साधनो की जितनी अधिक विपुलता है, वे उतने ही अधिक अशान्ति की आग से जल रहे है तो स्पष्ट ही यह ज्ञान होना चाहिए कि शान्ति का यह मार्ग नही है जिस पर न केवल दुनिया चल ही रही है अपितु दौड रही है। शान्ति का कोई दूसरा ही रास्ता है। जब यह प्रतीत हो जाय कि शान्ति की मजिल पर पहुचने के लिए हमने जो मार्ग अपनाया है, वह गलत है तो समझदारी और विवेक का तकाजा है कि हम उस मार्ग को तत्काल छोड दे और सही मार्ग की खोज करे, अन्यथा हम शान्ति की मजिल तक कभी नही पहुच पाएगे। भौतिक साधनो को जुटा कर देख लिया कि इनमे कही शान्ति का नामोनिशान नही है अपितु ये तो शान्ति को चौपट करने वाले है तो अपनी गलत दिशा को छोड दीजिये और सही दिशा की ओर मुड जाइये। वह सही दिशा है– प्रभु सुविधिनाथ की बताई हुई आध्यात्मिक सुविधि। इस आध्यात्मिक सुविधि का अनुसरण करने से ही आत्मा शान्ति का आनन्द पा सकता है।

पावन प्रसग पर्युषण

आप सब शान्ति पाना चाहते है। शान्ति के साधन जुटाना चाहते हैं। बाह्य साधनो को जुटाने के प्रयास मे इतना समय निकल गया, आयु का बहुत–सा भाग चला गया किन्तु शान्ति के दर्शन हुए क्या ? शान्ति की एक किरण भी प्रस्फुटित हुई हो तो बताइये ? तो आइये, बाहर से दृष्टि हटाइये, सुविधिनाथ परमात्मा के गुण गाइये, उनकी बताई हुई विधि पर कदम बढाइये और शाश्वत शान्ति का आनन्द पाइये।

शान्ति के शाश्वत मार्ग को प्रशस्त करने के लिए पर्युषण का पावन प्रसग उपस्थित है। जिन आत्माओ ने अपने अन्तर स्वरूप को समझा है, जिन्होने ससार को समग्र रूप से जान लिया है, जिनसे विश्व का कोई भी अश छिपा हुआ नहीं है, ऐसे सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ने जगत् के जीवो के कल्याण के लिए इस पर्व का निरूपण किया है। यह पर्व शान्ति का सदेश–वाहक है, विश्व के आगन मे समता का विस्तारक है, सुख का सचारक है, पाप के ताप का निवारक है, भवोदधि–तारक है और जग जीवो का उद्धारक है। कषाय की आग को शान्त करने के लिए यह पानी है, वैर–विरोध की गर्मी को प्रशान्त करने हेतु यह मेघ की धारा है, मन की मलिनता को धोने के लिए यह गगा जल है, विषयो के विष–विकारो को हटाने के लिए यह अमृत है, मोहान्धकार को मिटाने के लिए यह सूर्य है, आध्यात्मिक दीनता की दूर करने के लिए चिन्तामणि है और मुक्ति रूपी फल के लिए कल्पवृक्ष है।

यह पर्युषण पर्व आत्मा का पर्व है। किसी समाज जाति या वर्ग विशेष का न होकर यह व्यापक और सार्वभौम है। सूर्य सबको प्रकाश देता है। वह सारे विश्व का है। चन्द्र सबको शीतल उद्योत प्रदान करता है। वह किसी खास वर्ग का नही है। पृथ्वी सबके लिए आधारभूत है। इसी तरह यह पर्व भी सबके लिए मगलकारी है। इसमे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का कोई विभाग नहीं है। राजा या रक, निर्धन या सम्पन्न, मालिक या मजदूर, स्त्री या पुरुष, युवक या वृद्ध, जनता या नेता प्रत्येक व्यक्ति इस पर्व की आराधना का अधिकारी है। जैन समाज ही इस पर्व की आराधना का एक मात्र ठेकेदार या लाइसेस होल्डर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति जो आत्म–सशोधन करने की अभिलाषा रखता है, जो अपने मन की मलिनता को धोना चाहता है, जो अपनी अन्तर–चेतना को जागृत करना चाहता है, उसके लिए यह पर्व एक स्वर्णिम अवसर है। कौन नही चाहता है कि उसकी आत्मा निर्मल बने। कौन व्यक्ति मन मे मैल को जमा रखना चाहता है ? सब मैल को धोना चाहते है। अतएव इस शुद्धि पर्व मे सबको सम्मिलित होना चाहिए। आध्यात्मिक शुद्धि के इस पावन पर्व पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन का मैल साफ कर लेना चाहिए और इसकी शीतल जलधारा से पाप के ताप को शान्त कर लेना चाहिए।

काल की अनुकूलता

जैन सिद्धान्त मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का स्थान–स्थान पर निरूपण है। प्रत्येक कार्य मे इन सब की महत्त्वपूर्ण भूमिका

होती है। पर्युषण के काल निर्धारण मे भी उन महामनीषी परम ज्ञानी आप्त पुरुषो की सूक्ष्मदर्शिता परिलक्षित होती है। वर्षावास का समय निवृत्ति की उपासना के लिए अन्यकाल की अपेक्षा विशेष अनुकूल होता है। कृषक, व्यापारी, अधिकारी आदि सभी वर्गों के लिए यह समय धर्माराधन के लिए विशेष सुविधाजनक है। अतएव भाद्रपद मास मे यह पवित्र पर्व निर्धारित हुआ।

चातुर्मास कल्प

शास्त्रीय मर्यादानुसार जैन मुनियो के कल्पो का विधान किया गया है। उनमे चातुर्मास कल्प एक महत्त्वपूर्ण कल्प है। शास्त्र मे निर्दिष्ट है कि मुनि वर्ष के आठ मासो मे सयम और तप से आत्मा को भावित करता हुआ ग्रामानुग्राम विचरण करे। जैसे बहता हुआ पानी निर्मल होता है उसी तरह विचरण करता हुआ मुनि भी अनासक्त, अप्रतिबद्ध और निर्ममत्व होने के कारण निर्मल बना रहता है। अधिक समय तक एक स्थान पर रहने से ममत्व पैदा होने की सभावना रहती है। उसको टालने के लिए मुनि को अप्रतिबद्ध विहारी होना चाहिए। जिस सयम की साधना और रक्षा हेतु शेषकाल मे विहार की अनुज्ञा है उसी सयम की साधना और रक्षा हेतु ही चातुर्मास काल मे एक स्थान पर रहने की अनुज्ञा है। जीवोत्पत्ति विशेष होने के कारण गमनागमन द्वारा उसकी विराधना टालने के लिए चातुर्मास कल्प मे मुनियो को एक स्थान पर रहने का शास्त्रीय निर्देश है। इसी कल्पानुसार हम देशनो मे स्थित है।

इस कल्प का उद्देश्य मुनियो की आत्मासाधना तो है ही परन्तु इसके साथ ही सघ, तीर्थ, समाज और सर्वसाधारण के कल्याण की भावना भी इसमे सन्निहित है। मुनि जहा चातुर्मास करे, वहा की जनता को धर्माराधन की प्रेरणा करता रहे। सर्वसाधारण जनता को अवलम्बन की आवश्यकता होती है। मुनियो के अवलम्बन से जनता मे धार्मिक भावनाए जागृत होती हैं, धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न होती है और उनकी प्रेरणा से जनता का नैतिक और आत्मिक धरातल समुन्नत होता है। प्रभु महावीर की शासन व्यवस्था बहुत ही उत्तम कोटि की है। इसमे व्यक्तिगत कल्याण के साथ ही साथ समष्टि का कल्याण भी सन्निहित है। इसी दृष्टिकोण से चातुर्मास–कल्प जहा मुनियो के लिए आत्मकल्याण का साधक है, वही सघ एव समाज के लिए भी अत्यन्त हितावह और कल्याणकारी है। साधु–सत आत्म कल्याण के साथ ही सर्वसाधारण को बिना किसी भेदभाव के आशसा रहित होकर एकान्त परमार्थ दृष्टि से उपदेश देकर उनके जीवन को सस्कारित और प्रकाशित करने का प्रयत्न करते है। वे स्वय भी सयम मार्ग की आराधना करते है और अन्य को भी सयम के मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते है।

पर्व का इतिहास

इसी दृष्टिकोण को लेकर आप और हम आज सवत्सरी पर्व की आराधना हेतु यहा एकत्रित है। यह पर्व सनातन काल से

जाता रहा है। इसका इतिहास कुछ वर्षो या शताब्दियो का

अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। उनमे प्रभु महावीर चरम तीर्थंकर हैं। पूर्व के तीर्थंकरों ने जो प्रतिपादित और आचरित किया, वही प्रभु महावीर ने प्ररूपित और व्यवहृत किया क्योकि सभी तीर्थंकरो की मौलिक प्ररूपणा एक समान होती है। सर्वज्ञ–सर्वदर्शी तीर्थंकरो के ज्ञान मे कोई अन्तर नहीं होता। पूर्व के तीर्थंकरो के उपदेश और आचारो का प्रतिविम्ब हमे प्रभु महावीर मे सक्रात होता हुआ दृष्टिगत होता है। समवायाग सूत्र मे कहा गया है –

समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे वइक्कते।
सत्तरिएहि राइदिएहि सेसेर्हि वासावास पज्जेसवेइ ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षावास का एक माह वीस दिन बीतने पर और 70 रात्रि दिन अवशेष रहने पर पर्युषण–कल्प अर्थात् सवत्सरी पर्व की आराधना की। चातुर्मास का आरम्भ आषाढ शुक्ला पूर्णिमा से होता है। उसमे 49 या 50 वा दिन भाद्रपद शुक्ला पचमी को आता है। इस आगम के पाठ से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रभु महावीर ने और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरो ने भी इस पर्व का आराधन किया था। इससे इस पर्व की सनातनता और महत्ता सिद्ध होती है।

यह दिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्त्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि के लिए भी युगान्तरकारी है। जैन सिद्धान्त के अनुसार कालचक्र के बारह आरक हैं। छह आरक उत्सर्पिणी (उत्तरोत्तर विकास) काल के हैं और छह आरक अवसर्पिणी (क्रमिक ह्रास)

काल के है। जिस समय मे मनुष्य आदि प्राणियो के शरीर की ऊचाई–चौडाई तथा शक्ति मे तथा जमीन आदि पदार्थों के रस–कस मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है और जिस समय मे इनका क्रमिक ह्रास होता जाता है, वह समय अवसर्पिणी काल कहलाता है। यह काल का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। वर्तमान मे अवसर्पिणी काल का पञ्चम दु षम नामक आरा चल रहा है। 21 हजार वर्ष तक यह चलेगा। इसकी समाप्ति पर छठा दु षम–दु षम आरक लगेगा। वह ह्रास की पराकाष्ठा काल होगा। उसमे धर्म, कर्म, राज्य व्यवस्था आदि का लोप हो जायगा। प्रकृति मे भयकर उथल–पुथल होगी। गाव–नगर उजड जाएगे। वह आरा लगते ही प्रथम सप्ताह मे भयकर प्रलयकारी वायु चलेगी जो अधिकाश बस्तियो को उजाड देगी। एक सप्ताह तक असह्य प्रलयकर ठड पडेगी। एक सप्ताह तक खारे जल की मूसलाधार वर्षा होगी। वह जल इतना खारा और तीक्ष्ण होगा कि जीवधारियो और वनस्पतियो के शरीर जलने लगेगे। इसके पश्चात् 7 दिन तक विष–वृष्टि, 7 दिन तक धूलि– वृष्टि और 7 दिन तक धूम्र की वृष्टि होगी। इस तरह सात सप्ताह प्रलयकारी दृश्य रहेगा। 50वे दिन शान्ति होगी। इसी तरह जब उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा तब उसके प्रथम आरक मे भी यही स्थिति चलेगी। जब दूसरा आरा प्रारम्भ होगा!, तब एक सप्ताह तक दूध जैसे पानी की वर्षा होगी, एक सप्ताह तक घृत की वर्षा, एक सप्ताह तक अमृत की वर्षा, एक सप्ताह तक ईख जैसे जल की वर्षा, इसके पश्चात्

आत्मशुद्धि का पर्व ·

प्रभु महावीर के चतुर्विध सघ (साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका) के प्रत्येक सदस्य के लिए इस पर्व की आराधना करना अनिवार्य होता है। तभी वह प्रभु की आज्ञा का आराधक माना जाता है। अतएव प्रत्येक सदस्य को गभीरता के साथ इस पर्व की आराधना के लिए चिन्तन, मनन और अनुशीलन करना चाहिए।

यह पर्व, अन्य लौकिक पर्वों की अपेक्षा विलक्षण है। अन्य पर्वों मे खाना–पीना–ओढना, रग–राग और आमोद–प्रमोद की प्रमुखता होती है। इस पर्व मे यह सब छोडना होता है। अन्य पर्व शरीर को सजाने के लिए है तो यह पर्व आत्मा को सजाने–सवारने के लिए है। आत्मा को सजाने–सवारने के लिए आवश्यक है कि शरीर की आसक्ति को हटाया जाय। एक म्यान मे दो तलवार नही रह सकती। इसी तरह शरीर की आसक्ति और आत्मा की भक्ति एक साथ नही हो सकती। अतएव इस पर्व पर खान–पान का त्याग किया जाता है, वस्त्राभूषणो की चमक–दमक को छोडा जाता है, विषय कषायो से दूर रहा जाता है। प्रत्येक अपने आपको जैन मानने वाला व्यक्ति इस दिन उपवास करता है। बारह महीनो मे कभी धर्मस्थान पर न आने वाला व्यक्ति भी इस दिन तो अवश्य धर्मस्थान पर आता है। यह इस बात का द्योतक है कि जैन ससार मे इस पर्व का कितना महत्त्व है।

जैन साधु–साध्वी समुदाय इस दिन चौविहार उपवास रखते है। केश–लुचन करते है, साथ ही कषायो का भी लुचन

करते है। सयम की साधना मे लगे दोषो की आलोचना करते है प्रायश्चित्त लेते है और आगे के लिए प्रत्याख्यान करते है। श्रावक–श्राविकावर्ग भी उपवास[1] करते है, पौषध[2] करते है, कषायो को शान्त करते हैं, वैर–विरोध को मिटाते है और परस्पर मे क्षमा का आदान–प्रदान करते है। यह आत्मनिरीक्षण का दिन है। वर्ष भर के कार्यों का, व्यवहारो का लेखा–जोखा करके यह जानना चाहिए कि इस वर्ष मे आत्मिक क्षेत्र मे कितनी प्रगति हुई या कितनी अवनति हुई ? आत्मनिरीक्षण द्वारा अपनी भूलो का चिन्तन कर उनके सशोधन के लिए सकल्प करना चाहिए। ससार के सभी प्राणियो के साथ मैत्री भाव रखने की भावना विकसित होनी चाहिए। जिनके साथ वैर–विरोध का प्रसग बना हो उनके प्रति विशेष ध्यान देकर क्षमा–याचना करनी चाहिए। शास्त्रकार फरमाते हैं कि चाहे साधु हो या श्रावक, जो कषायो को, क्लेशो को उपशमाता है वही आराधक है, जो नहीं उपशमाता है, वह आराधक नहीं है।

---

1 उपवास का तात्पर्य आत्मा के स्वरूप चिन्तन के लिए खान, पान आदि कार्यों से निवृत्त हो अन्तर के सशोधन मे सलग्न होना है। कहा है कि –

कषायविषयाहार त्यागो यत्र विधीयते।
उपवास स विज्ञेय तु लघन विदु ।।

2 पौषध का तात्पर्य आत्मा मे विद्यमान त्याग वैराग्य के गुणो का पोषण करना एव उनमे अभिवृद्धि करना है।

'जे उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा।

जे नो उवसमइ तस्स णत्थि आराहणा।।'

'उवसमसार खलु सामण्ण' सयम चाहे वह सर्वसयम हो अथवा देश सयम हो–का सार उपशम है। कषायो का, क्लेशो का वैर–विरोधो का उपशमन करना ही सयम है। आज के इस महान् पर्व का एक मात्र सन्देश है – उपशम । स्वय शान्त बनिये और दूसरो को भी शान्ति दीजिये। क्षमा कीजिये और क्षमा मॉगिये।

'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।

मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ न केणइ।।'

आत्मा के अन्दर से ही नाद प्रकट होना चाहिए। 'मै सब जीवो को क्षमा प्रदान करता हू और सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करे। ससार के किसी जीव के साथ मेरा वैर नहीं है। सब जीवो के साथ मेरी मैत्री है।' यह अन्तर्नाद जब आत्मा मे स्फुरित होता है, वाणी द्वारा प्रकट होता है, आचरण मे आता है तो अत्मा निर्मल हो जाती है, शल्यरहित हो जाती है, कर्मभार से हल्की हो जाती है एव परम शान्ति का अनुभव करती है। आत्मशुद्धि का यह भव्य प्रसग आज हमारे सामने उपस्थित है।

पर्युषण पर्व के दिनो मे आपने 'अन्तगड' सूत्र का श्रवण किया है। उसमे कैसे–कैसे आदर्श महामानवो और महा–महिलाओ के चरित्र अकित है । आत्मशोधन के लिए उन्होने सयम और तप की कितनी उत्कृष्ट साधना की, यह आप श्रवण कर चुके है।

मगध के सम्राट श्रेणिक की रानियो ने सयम अगीकार करके कितनी कठोर तपस्याए की । उनका वर्णन सुनने मात्र से रोमाञ्च हो आता है। राजभवनो मे रहने वाली, स्वर्ण के झूलो मे झूलने वाली कोमलागी राजरानियो ने रत्नो और मोतियो के आभूषणो को छोडकर तप के मुक्ताहारो से अपनी आत्मा को सजाया, अलकृत किया। कनकावली और रत्नावली तप के हारो को धारण किया। अतएव उनकी महिमा इस प्रसग पर सत–जन किया करते है। एक गायन की कडी इस प्रकार है –

काली ओ रानी सफल कियो अवतार।

काली रानी ने कठोर तपस्या करके अपने जीवन को धन्य और सफल बनाया। आज भी माताए तपस्या करने मे पीछे नहीं रह रही है। देशनोक मे वडी–वडी तपस्याओ का प्रसग उपस्थित हुआ है। आज एक वहिन के 47वे उपवास की तपस्या है उनकी शारीरिक स्थिति देखकर कोई कल्पना तक नही कर सकता कि यह इतनी लम्बी तपस्या कर सकती है। वास्तविकता तो यह है कि तपस्या का सम्बन्ध शारीरिक स्थिति के साथ नहीं है। इसका सबध मनोबल और आत्मा के साथ रहता है। यह वहिन (पूरनबाई मुकीम) प्रतिवर्ष तपस्या करती हे। कभी 30, कभी 51 उपवास की तपस्या भी कर चुकी है। यहा पर 41 और 30 उपवास की तपस्याए भी हो चुकी है। अजीव ढग का रसायन इन माताओ मे आ जाता है। अठाइया तो बहुत–सी हो चुकी है और हो रही है। पहले जिन्होने उपवास भी नही किया वे भी अठाई कर रहे है। विविध प्रकार की अन्य तपस्याए भी हो रही है जिनकी सूची मत्रीजी बना रहे है।

तप से शुद्धि

जिस प्रकार आग मे तपकर सोना निखर उठता है उसी तरह तपस्या की आग मे आत्मा का मैल जल जाता है और वह शुद्ध स्वर्ण की तरह निखर उठती है। आत्मा के विकारो को जलाने के लिए तप आवश्यक है। वह आत्मशुद्धि का अनिवार्य अग है। जिस प्रकार शरीर के रोगो का उपचार प्रारम्भ करने के पूर्व वैद्य विरेचन (जुलाब) देकर पेट की शुद्धि करता है, ऐसा करने के बाद ही औषधि अपना प्रभाव प्रकट करती है, अन्यथा वह निरर्थक सिद्ध होती है। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन के वैद्य प्रभु महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए प्रारम्भिक उपचार के रूप मे तप का प्रतिपादन किया है। आध्यात्मिक शुद्धि के लिए भूमिका के रूप मे तप की आवश्यकता है। तप के माध्यम से भूख की परतत्रता मिटती है, शरीर की आसक्ति घटती है और भावनाओ मे निर्मलता आती है। यही से आध्यात्मिक शुद्धि की भूमिका शुरू होती है। दोषो को हटाने की क्षमता आती है। कषायो को शमन करने की योग्यता प्रकट होती है। आत्मा मे आर्द्रता, कोमलता, स्निग्धता और सरलता पैदा होती है जिससे वह धर्म और मोक्ष रूपी अकुर को उत्पन्न करने मे समर्थ बनती है।

जिस मिट्टी मे आर्द्रता और मृदुता नही है, उसमे कोई अकुर नही फूट सकता। अतएव चतुर किसान बीज बोने से पहले भूमि की आर्द्रता की अपेक्षा रखता है। मिट्टी के मुलायम होने पर ही वह बीज वपन करता है अन्यथा बीज के व्यर्थ चले जाने की आशका रहती है। इसी तरह धर्म और मोक्ष के अकुर को यदि आप प्रकट करना चाहते है तो पहले आत्मा को सरल, आर्द्र और सुकोमल

बनाना चाहिए। तप के द्वारा यह भूमिका प्राप्त होती है तथा इस स्थिति को प्राप्त करने मे ही तप की सार्थकता है।

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ

सिहनी का दूध स्वर्ण के पात्र मे ही रह सकता है। इसी तरह सम्यक्त्व या धर्म भी शुद्ध आत्मा मे ही टिक सकता है। आप सवत्सरी महापर्व की आराधना हेतु यहा सतो की सेवा मे आये है तो सर्वप्रथम भूमिका की शुद्धि हेतु मन के विकारो को पारस्परिक वैर–विरोध ओर मनोमालिन्य को धोकर शुद्ध हो जाइये। आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने दोषो की आलोचना कीजिये आर प्रायश्चित्त के पानी से उन्हे धो डालिये। आलोचना सुनने योग्य समर्थ सद्गुरु के समक्ष अपनी आलोचना कर हृदय को परिमार्जित कर लीजिये। जिनके साथ वैर–विरोध का प्रसग प्राप्त हुआ हो उनसे अन्त करणपूर्वक क्षमायाचना कीजिये।

याद रखिये, क्षमा मागना और क्षमा करना दिव्यता ओर महत्ता का सूचक है। अक्कडपन या मिथ्या अहकार क्षुद्रता की निशानी है। बडे–बडे छायादार और फल वाले वृक्ष झुकते है। एरण्ड कभी नहीं झुकता। लोकोक्ति है –

नमे सो आबा आमली, नमे सो दाडिम दाख।
एरण्ड बेचारा क्या नमे, जाकी ओछी साख।।

झुकने मे बडप्पन है। आम्र, इमली, दाडिम, दाख आदि जातिवत तरु झुकते है। तुच्छ एरण्ड का झाड अक्कडपन से नहीं झुकता। परिणाम यह होता है कि वह वायु के आघात से

धराशायी हो जाता है जबकि बडे और झुकने वाले पेड हवा के आघातो मे भी मस्ती से झूमते रहते है।

अतएव इस मिथ्याभिमान को दूर कीजिये कि 'मै सामने वाले से पहले क्षमा कैसे मागू ? पहले वह क्षमा मागेगा तो मै मागूगा।' यदि ऐसी भावना दिल के किसी भी कोने मे विद्यमान है तो समझ लीजिए कि आत्मशुद्धि का कोई अवसर नही है। इस प्रकार की भावना तो महज सौदेबाजी है। सौदेबाजी के अभ्यासी आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी सौदेबाजी करते है परन्तु इससे आत्मा की शुद्धि नही हो सकती। सामने वाला व्यक्ति क्षमा मागे या ना मागे, आपको पहल करनी चाहिए। वैर–विरोध और कषाय के पोटले को फेक कर लघुभूत हो जाइये। आज का यह महान् शान्ति पर्व आपको यह प्रेरणा दे रहा है, एक अपूर्व अवसर आपके सामने उपस्थित है। यदि आज के दिन क्षमा याचना नही की और अगले बारह महिनो के लिए वही बनी रही तो सम्यक्त्व भी नही रह पायेगा तो श्रावकत्व की तो बात ही क्या ?

शास्त्रकारो ने कहा है कि जिस व्यक्ति के जीवन मे क्रोध की मात्रा इतनी तीव्र है कि जिससे उसका वैर–विरोध हो जाय, वह व्यक्ति उसे क्षमायाचना कर लेता है फिर भी वह व्यक्ति उसे क्षमायाचना नहीं करता और अपने विरोध को क्लेश को, कषाय को बनाये रखता है तो वह अनन्तानुबधी कषाय वाला होता है।

स्वर्गीय आचार्य देव फरमाया करते थे कि –

"ताबा, सोना, सुघड नर, टूटे जुडे सौ बार।
मूरख हाडी कुम्हार की, जुडे न दूजी बार।।"

ताबा, सोना और बुद्धिमान व्यक्ति टूटने पर पुन जुड जाते हैं। लेकिन कुम्हार की हाडी और मूर्ख व्यक्ति टूट जाने पर फिर नहीं जुडा करते। मूल्यवान ताबा–सोने के बर्तन फूट जाते है तो ताप लगने से पुन जुड जाते हैं। सुघड नर भी विचार भेद होने पर समझाने–बुझाने से अपना आग्रह छोड कर एक हो जाते है। मै समझता हूँ आप सुघड नर है। मूर्ख की श्रेणी या कुम्हार की फूटी हाडी जैसा होना तो आप पसन्द नही करेगे। आप चतुर और विचक्षण व्यापारी है। अतएव अपने मनोमालिन्य को समाप्त कर आपस मे प्रेम की गगा बहाइये। आपकी आत्मा अनुपम शान्ति का अनुभव करेगी। यह सवत्सरी पर्व का सम्यग् आराधन होगा। मन का मैल धो डालिए, कषायो का शमन कर लीजिये, क्षमा और शान्ति की सरिता मे अवगाहन कीजिये।

अपना दिल और हृदय विशाल होता है, उदार होता है, क्षमाशील होता है तो उसका प्रभाव दूसरे पर पडे विना नहीं रहता। इसके सबध मे एक कथानक बहुत मननीय है।

दोषी कौन ?

एक धर्म सभा की घटना है। धर्मस्थान मे सब तरह के व्यक्ति पहुचते है। सेठ,साहूकार, राजा–महाराजा, नेता, गरीब, मजदूर, राह के भिखारी आदि सब आते हे। धर्म स्थान सबको प्रश्रय देता है, सब आत्मसाधना के अधिकारी है। धर्मस्थान गगा के समान होता है । वहा भेदभाव नहीं होना चाहिए। सतजन सबको समभाव से उपदेश देते है।

एक सम्पन्न सेठ धर्मस्थान मे आये। उनके गले मे हीरो का कठा था। एक दूसरा व्यक्ति भी धर्मस्थान मे आया। वह आर्थिक दृष्टि से बडा कमजोर था। सेठ ने रात्रि के समय पौषध किया और कठा उतार कर अपने पास रख लिया। दूसरा व्यक्ति जब धर्मस्थान मे आया था तब उसकी भावना मलिन नहीं थी परन्तु सेठ का कठा देखकर उसके मन मे मलिन भावना आ गई। उसने सोचा– "मै बहुत दुखी हूँ, बाल–बच्चो का भरण–पोषण भी नहीं कर पाता हूँ, मेरे पास साधन नही है, आजीविका चलती नहीं, कोई उधार भी नही देता, क्या करू ? कैसे परिवार का निर्वाह करू? क्यो न सेठ जी का यह कठा चुपके से उठा लू ?'

धर्मस्थान मे आने से भावना पवित्र बननी चाहिए परन्तु परिस्थितिवश उस भाई के दिल मे मलिन भावना आ गई । वर्षा से सब वनस्पति हरी–भरी हो जाती है परन्तु जवासा सूखता चला जाता है। परिस्थिति और सयोगी के कारण उस व्यक्ति के दिल मे पाप आगया और उसने वह कठा उठा लिया' ।

सेठ उस समय पौषध मे थे । धर्मध्यान की भावना प्रबल थी । सेठ ने उसे कठा उठाते हुए देख भी लिया था परन्तु वह चुपचाप रहा। उसने विचार किया कि 'इस समय मैं व्रत मे हूँ। कठे को मैने उतार रखा है। वह अभी मेरा नही है।'

सेठ शान्त भाव से पौषध मे लीन रहा । उसने किसी से कोई चर्चा नही की । कितनी विशालता है सेठ के दिल की ! आज तो परिस्थिति कुछ और ही है ! यहा भाई–बहिने व्याख्यान

श्रावण कर रहे है परन्तु बहुतो का ध्यान शायद अपने जूतो और चप्पलो की ओर है कि कोई उन्हे उठा न ले जाय। सेठ का कठा उठा लिया गया परन्तु सेठ ने किसी से चर्चा तक नहीं की। कितना बडा है उसका दिल।

वह व्यक्ति कठा चुरा कर चला गया । लेकिन उसके मन मे उथल-पुथल मच गई । वह सोचने लगा-'मैने बडा भारी पाप किया है । धर्मस्थान मे चोरी की है । अन्य स्थान पर किया हुआ पाप धर्मस्थान मे आकर छुडाया जाता है । धर्मस्थान मे किया हुआ पाप तो वज्रलेप होता है । उससे छुटकारा कहा मिलेगा ?' वह अपने आपको कोस रहा था और घबरा भी रहा था। उसे भय था कि प्रात काल पौषध पार कर सेठ घर आएगा तो मुझे पकडवा कर दण्डित कराएगा। शका और भय के कारण वह आकुल-व्याकुल था । उसका चित्त अशान्त था । वह पाप करना नही चाहता था परन्तु परिस्थिति ने उसे लाचार बना दिया था, वह आदतन अपराधी नही था । अत उसे अपने इस कार्य पर बहुत खेद हो रहा था।

प्रात काल सेठ पौषध पार कर अपने घर पहुचा । सेठ के गले मे कठा न देखकर परिवार और दुकान के लोगो ने पूछा तो सेठ ने कहा-चिन्ता न करो, वह ठिकाने पर है ।' सेठ ने गभीर दृष्टि से विचार किया, इन्सान परिस्थितियो का दास है। वह पाप करना नहीं चाहता परन्तु परिस्थितिया उसे लालची बना देती है। उस व्यक्ति ने कठा चुरा लिया है, निश्चित ही वह बहुत परेशान

और दुखी होगा । यह मेरा अपराध है कि मैने सम्पन्न होते हुए भी दूसरे साधर्मिक भाइयो की सार–सभाल नही की । यदि मै पहले ही अपने इस कर्तव्य का पालन करता तो उस व्यक्ति को यह पाप करने का प्रयास ही नही आता।' सेठ को अपने साधर्मिको के प्रति उपेक्षा–भाव रखने का पश्चात्ताप हो रहा है । उधर वह व्यक्ति भी पश्चात्ताप कर रहा है परन्तु उसको अपनी समस्या का समाधान नही मिल रहा है । दोपहर तक उसने राह देखी कि सेठ क्या करता है ? सेठ के घर के पास होकर वह निकला, सेठ की ओर उसकी दृष्टि मिली भी लेकिन सेठ ने कुछ नही कहा । तब उसके मन मे आया कि सेठ का दिल बहुत बडा है। यह कुछ करने वाला नही है । वह कुछ आश्वस्त हुआ।

अब उसके सामने समस्या है कि इस कठे को गिरवी रखकर रुपये कहा से प्राप्त करे ? वह सोचता है कि यदि अन्यत्र कही गिरवी रखता हूँ तो चोरी की शका मे पकडवा दिया जाऊगा । अत उसी बडे दिल वाले सेठ के यहा कठा गिरवी रखकर रुपये प्राप्त करू तो ठीक रहेगा ।

दिन के पिछले भाग मे वह कठा लेकर उसी सेठ के पास गया। लज्जित और भयभीत होते हुए उसने कहा, 'मै मुसीबत मे फसा हुआ हूँ । कृपया यह कठा गिरवी रख लीजिये और दस हजार रुपये दे दीजिये। वह कठा उसने उनके सामने रख दिया । सेठ समझ रहा था कि यह मेरा ही कठा है किन्तु वह यह भी समझ रहा था कि यह व्यक्ति अत्यत ही मुसीबत का मारा हुआ

है । उसने कहा—'अच्छा तुम दस हजार रुपये ले जाओ और गर कठा भी ले जाओ। मुझे तुम्हारा विश्वास है। उस व्यक्ति ने आगर करके कठा सेठ के यहा गिरवी रख दिया और दस हजार रुपये ले लिये । वह व्यक्ति सोच रहा था कि यह सेठ सचमुच देव—पुरुष है। सेठ के विचारो मे बहुत ही विशालता और उदारता आ गई थी। उसकी मानवता प्रबुद्ध हो उठी थी। स्वधर्मी वात्सल्य की उर्मिया उसके हृदय मे हिलोरे ले रही थी। तभी ऐसा व्यवहार हो सकता है, अन्यथा अपना ही चुराया हुआ माल अपने यहाँ गिरवी रखने कोई आवे उस समय अन्य उसके प्रति कैसा और क्या व्यवहार करेंगे, यह मुझे बताने की आवश्यकता नही है।

वह सेठ और सेठानी मानवता का पाठ पढ़े हुए थे। सेठानी सेठ से दो कदम और आगे थी । उसने सेठ से कहा, आपने अपने साधर्मिक भाई को कठा गिरवी रखकर रुपये दिये, यह अच्छा नही किया । उसे कठा वापस कर देना था । साधर्मिक भाई का विश्वास करना चाहिए। सेठ ने कहा मै तो कठा उसे वापस दे रहा था, परन्तु वह बहुत आग्रह करने लगा, अतएव रख लिया । जिन परिवारो मे धार्मिक संस्कार होते है, जहा स्वधर्मी बन्धुओ के प्रति आत्मीय भावना जागृत रहती है, उन परिवारो के सदस्यो मे कितनी उदार भावना आ जाती है, यह इस उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है ।

कालान्तर मे उस व्यक्ति ने दस हजार रुपयो से व्यापार शुरू किया और उसे लाभ होने लगा । उसने द्रव्य कमा लिया ।

उसके दिल पर सेठ के उदार व्यवहार का बहुत प्रभाव पडा था। वह सेठ को अपना उपकारी मान रहा था । कृतज्ञता के भार से दबा हुआ वह व्यक्ति दस हजार रुपये और उचित ब्याज लेकर सेठ के पास पहुचा और उन्हे रुपये दे दिये । सेठ ने रुपये ले लिये और कठा निकाल कर उसे देने लगे । उस व्यक्ति की ऑखो मे आसू आ गये और वह कहने लगा, 'सेठ साहब, क्षमा करना, यह कठा आपका ही है । मैने परिस्थितिवश धर्म स्थान मे इसे चुरा लिया था । मै अत्यन्त पापी, अधर्मी और अनैतिक हूँ। आप मानव नहीं देव है, आपकी उदारता, दिल की विशालता और गभीरता ने मेरे जीवन को बदल दिया है । मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ । किन शब्दो मे मै आपका आभार व्यक्त करू, समझ नही पडता । सेठ मुझे क्षमा कीजिये ।'

सेठ ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, 'भाई । अधीर न बनो । तुम्हारा कोई दोष नहीं है । यह तो मेरा अपराध है कि मैने तुम्हारी सार–सभाल नहीं की । अतएव तुम्हे गलत मार्ग पर कदम बढाने के लिए मजबूर होना पडा।'

बन्धुओ । जब अन्तरग शुद्ध होता है तो कैसा रूपक बनता है, यह मनन करने योग्य होता है । सेठ ने वह कठा अपने पास नहीं रखा । साधर्मिक भाइयो के लिए ट्रस्ट बनाकर वह कठा उसमे दे दिया । सेठ की मानवता प्रबुद्ध हो चुकी थी । अतएव वह गरीब भाइयो और बहनो की अभावग्रस्तता मिटाने के लिए प्रयत्नशील रहता था । उनके दु ख–दर्द मे सहायता करता था, उद्योग धधो मे लगाने हेतु ध्यान रखता था । इस तरह वह स्वधर्मी

वात्सल्य के कर्तव्य का भली-भाँति निर्वाह करने लगा।

किसी समय, सवत्सरी पर्व का प्रसग आया । आलोचना और प्रायश्चित्त का विषय चल रहा था । उस भाई का हृदय बदल चुका था । अपने शल्य को निकाल शुद्ध होना चाहता था । उससे रहा नही गया । भरी सभा मे खडे होकर उसने सरल और सहज भाव से गुरुदव से निवेदन किया "गुरुदेव ! मै अत्यन्त अधम और पापी हू । मैने धर्मस्थान मे आकर भयकर पाप कर्म किया । सेठ का कठा चुरा लिया। इसके लिए मुझे दण्ड प्रायश्चित्त दीजिए।"

वह यह निवेदन कर ही रहा था कि सेठ एकदम खडे हुए और कहने लगे "भगवन् ! इसके पहले मेरी बात सुनिये । मै अधिक पापी हू । मैने साधन-सम्पन्न होते हुए भी स्वधर्मी भाइयो के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह नही किया फलस्वरूप इसे गलत मार्ग पर जाने के लिए मजबूर होना पडा । अत अपराध इसका नहीं, मेरा अपराध है, अत मुझे प्रायश्चित्त दीजिए।"

आजकल नगर-सेठ नही रहे परन्तु नगरपालिका के अध्यक्ष और ग्राम-पचायतो के सरपचो को इस रूप मे ले सकते हैं। इनका कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने नगर और ग्राम मे दीन-दुखियो और अभावग्रस्तो की सार-सभाल करते रहे। उक्त रूपक प्राचीन काल का है परतु वह आज भी उतना ही प्रासगिक है। भरी सभा मे अपने दोषो को प्रकट कर देना बहुत बडी वीरता है। यदि इतना शौर्य आप प्रकट न कर सके तो एकान्त मे गुरु के समक्ष अपने दोषो को प्रकट करके शुद्ध हो सकते हैं। परन्तु मैं

रहा हूँ कि आज तो परिस्थिति उल्टी चल रही है। लोग अपने दोष तो प्रकट नही करते, बल्कि दूसरे के दोषो को मेरे सामने प्रकट करते है।

कैसा रहा होगा वह युग। कैसी सरल भावना थी उस युग मे, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष को प्रकट करता था। हार चुराने वाला कहता है कि 'भगवन्। मै दोषी हूँ।' सेठ कहता है कि 'नहीं प्रभो। यह दोषी नहीं, मै दोषी हूँ।' कैसी उदात्त और निर्मल है यह भावना। अपने दोषो को स्वीकार करने और उन्हे प्रकट करने की क्षमता जब आती है, तभी आत्मशुद्धि होती है। अपने दोषो की आलोचना सरल भाव से करने पर आत्मा निःशल्य बनता है, शुद्ध बनता है और परम शान्ति का अनुभव करता है।

श्रेष्ठतम मुहूर्त :

बन्धुओ। आज सवत्सरी पर्व का पावन प्रसग है। आलोचना द्वारा आत्मशुद्धि करने का यह श्रेष्ठतम मुहूर्त है। आप लोग यात्रा पर निकलते है तो ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाते हैं। उस मुहूर्त पर विश्वास करके, तिलक लगवा कर आप प्रस्थान करते है क्योकि आपका विश्वास है कि ऐसा करने से कमाई अच्छी होती है, यद्यपि यह केवल श्रद्धा और विश्वास का विषय है। यह लौकिक मुहूर्त कभी फलते है और कभी नही फलते है। लेकिन सर्वज्ञ–सर्वदर्शी परमात्मा ने आत्मशुद्धि के लिए जो श्रेष्ठतम मुहूर्त बताया है वह तो अवश्य ही फलप्रद होता है। इस मुहूर्त पर जो व्यक्ति साधना कर लेता है, वह निहाल और धन्य बन जाता है। यदि आप इस

पर विश्वास करेंगे तो 'पल का वाया मोती निपजे' की लोकोक्ति सही सिद्ध होगी। स्वर्गीय आचार्यदेव फरमाया करते थे कि पल का बाया मोती कैसे निपजते है ?'

'पल का वाया मोती निपजे' :

एक ज्योतिष के पण्डित ने ज्योतिष विज्ञान का गहन अध्ययन किया था। उसकी पत्नी प्रतिदिन उससे झगड़ा करती हुई कहती कि तुम पोथिया पढ़ते रहते हो कमाई तो कुछ करते नही। ज्योतिषी ने कहा 'मै ऐसा मुहूर्त निकालूगा जब जुवार से मोती बन जाएगे। पत्नी को उस पर विश्वास नही था। वह कहने लगी 'गप्पे हाकना जानते हो, करते-कराते कुछ नही। जुवार से कभी मोती बन सकते है ?'

सयोग से आकाश म नक्षत्रो के योग का वैसा प्रसग आया। उस पण्डित न गणित द्वारा समय का निर्धारण किया। उसने अपनी पत्नी से कहा, 'देखो, अब म साधना करता हू। तुम जुवार लेकर बैठना, चूल्हे पर गरम पानी का बर्तन चढ़ा देना । जिस समय म 'हूँ' कहूँ, उसी क्षण जुवार के दाने गरम जल के बर्तन मे डाल देना । थोडी ही देर म वे मोती बन जाएगे ।

पत्नी को उसकी बात पर विश्वास तो था नही, फिर भी वह कहने लगी, 'घर मे एक समय का खाना भी नही है, जुवार कहा से लाऊ ? पण्डित ने कहा – 'पड़ोस म सेठानी रहती है, उससे उधार ले आओ ।'

पत्नी पडोसिन के पास गई और बोली कि सेठानी जी, मुझे 20 सेर जुवार उधार दे दीजिए।'

सेठानी ने सहज भाव से पूछ लिया, क्यो बाई, ऐसी क्या आवश्यकता पड गई, जो जुवार उधार माग रही हो ?' उस विद्वान् की पत्नी ने कहा, मेरे पति कहते है कि ऐसा मुहूर्त आने वाला है जब जुवार को चूल्हे पर चढे हुए गरम पानी के बर्तन मे डाल देने 'पर वह मोती रूप मे बदल जाएगी ।'

सेठानी को उस विद्वान् ज्योतिषी पर विश्वास था । वह मन ही मन प्रसन्न हुई और उसने 20 सेर जुवार उसको दे दी । सेठानी ने सोचा कि नक्षत्रो का योग तो आकाश मे होगा । पण्डित जी के घर मे नही । यदि ऐसा योग आने वाला है तो जैसे पण्डित जी के घर मे आएगा, वैसे ही मेरे घर मे भी आएगा। उनके यहा उस समय मे जुवार से मोती बन सकते है तो मेरे घर पर क्यो नही बनेगे ? उसने शीघ्र सिगडी तैयार करके गरम पानी का बर्तन उस पर रख दिया और बीस सेर जुवार पास मे रख कर दीवार के पास बैठ गई । उसके कान दीवार पर लगे हुए थे।

उधर उस विद्वान् की पत्नी भी पानी उबाल कर जुवार पास मे लेकर बैठ गई । विद्वान् ने आराधना शुरू की जैसे ही उसने 'हूँ' कहा, सेठानी ने तो जुवार पानी मे डाल दी किन्तु उस विद्वान् की पत्नी ने 'हूँ' शब्द सुनकर कहा 'क्या जुवार डाल दू ?' समय बहुत सूक्ष्म होता है । वह शुभ योग निकल गया । पण्डित ने माथा धूना । उसने कहा, 'मैने पहले ही समझा दिया था कि 'हूँ' कहते ही जुवार डाल देना । पूछने की क्या आवश्यकता थी ? इस मूर्खा ने सुअवसर गवा दिया ।' उसकी पत्नी ने वह योग निकल जाने

पर पानी मे डाली तो वह घूघरी बन गई । उसने क्रोधित होकर कहा—'यह क्या हुआ ? यह जुवार तो घूघरी बन गई । बडे चले थे जुवार से मोती बनाने ? अब मै पडोसिन को 20 सेर जुवार कहा से लाकर दूगी ? उसको इतना क्रोध आया कि उसने वह बर्तन लाकर पति के सामने पटक दिया और सारी घूघरी बिखर गई ।

उधर सेठानी ने बर्तन उघाडा तो उसमे मोती के दाने चमक रहे थे । 20 सेर जुवार मोती के रूप मे परिणत हो गई थी । उसमे से थोडे मोती लेकर वह उस विद्वान् ज्योतिषी के घर आई । उसके सामने मोती के दाने रखे और बोली पण्डित जी ! यह आपकी कृपा का परिणाम है । आपके बताये हुए मुहूर्त पर मैने जुवार पानी मे डाल दी जिससे सब मोती बन गये । उस के उपलक्ष्य मे यह तुच्छ भेट आप को समर्पित करने आई हूँ ।

यह सुनकर विद्वान् को अपनी विद्या पर और अधिक विश्वास हुआ। वह अपनी पत्नी से बोला, 'तुमने मुहूर्त चुका दिया ! सेठानी ने मुहूर्त साध लिया तो वह निहाल हो गई।

यह सुनकर पत्नी के नेत्र खुले और वह रोने लगी। वह कहने लगी 'एक बार और वही मुहूर्त ले आओ।' पण्डित जी ने कहा, 'ऐसा दुर्लभ सयोग बारबार नही आया करता। वह तो कभी कभी आता है। जो उसका लाभ उठा लेता, वह निहाल हो जाता है। जो उसे गवा देता है, वह रोता रह जाता है।

आज सवत्सरी का ऐसा ही शुभ योग आया है। तीर्थंकर भगवतो ने यह श्रेष्ठतम मुहूर्त दिया है। उस पर विश्वास करोगे तो जुवार से माती बन जाएगे। यदि विश्वास न करोगे और इस दुर्लभ अवसर को गॅवा दोगे तो उस मूर्खा पत्नी की तरह पश्चात्ताप करना पडेगा। इस मुहूर्त का लाभ उठा लीजिये। जुवार से मोती बना लीजिये। तीर्थंकर देवो के वचनो पर विश्वास रखकर अपने दोषो की आलोचना करिये, उनको निकाल कर बाहर कीजिये, वैर विरोध को मिटा दीजिये। आपके दोष रूपी जुवार के दाने सद्‌गुण रूपी मोती मे बदल जाएगे। आप निहाल और धन्य बन जाएगे। आपका इहलौकिक और पारलौकिक जीवन मंगलमय बन जाएगा। बडा सुन्दर सुअवसर उपस्थित है –

'यह पर्व पर्युषण आया, घर घर मे मगल छाया रे
यह पर्व पर्युषण आया'

'यह पर्व ससार मे आनद की वृद्धि करने के लिए, घर–घर मे शान्ति का सचार करने के लिए, हृदय को शुद्ध और पवित्र वनाने के लिए आया है। छोटे–छोटे बालको मे भी उमग दिखाई देती है। वे भी उपवास करने को तैयार होते है। बच्चो मे खानेपीने की प्रवृत्ति विशेष पाई जाती हे। पर्व दिनो मे वे अच्छा खाना, अच्छा पहनना पसद करते हे परन्तु आज का यह पर्व विलक्षण ही ह। वालक भी इस दिन उपवास रखना चाहते हैं। यह त्याग भावना उन सस्कारो का परिणाम है जो तीर्थंकर देव ओर उनकी परम्परा को सुशोभित करने वाले विशिष्ट गरिमा सम्पन्न त्यागी

आचार्यों और मुनिवरो ने प्रदान किये है। त्याग, व्रत सवर, आलोचना, प्रतिक्रमण क्षमापना आदि के द्वारा इस महत्त्वपूर्ण दिन का लाभ लीजिये। बार-बार याद रखिये कि 'पल के माय मोती निपजते है।'

आज के इस महान् आध्यात्मिक पर्व के प्रसग पर भी कतिपय युवक सामायिक सवर किये बिना ही बैठे है। क्या ही अच्छा हो यदि वे सामायिक करके व्याख्याना श्रवण का लाभ ले। स्वेच्छया व्रत अगीकार कर आत्मानुशासन करना चाहिए। व्रतो की मर्यादा स्वीकार करनी चाहिए। अव्रत अवस्था म रहना ठीक नही है। व्याख्यान मे सामायिक करके बैठने से दुहरा धर्म होता ह। आप यहा बठते तो है फिर सामायिक करने का लाभ क्यो नही लेते ? याद रखिये, व्रत-प्रत्याख्यान करने से ही आश्रव से बचा जा सकता है अन्यथा निरर्थक पाप का भार आत्मा पर चढता रहता है। अतएव अव्रत का त्याग कर व्रत-धारण कीजिये और इस महान् मगलमय पर्व की आराधना मे सम्मिलित होइये।

महाराजा उदायन की आराधना -

महाराजा उदायन बारह व्रतधारी श्रावक थ। उनकी दासी स्वर्णगुटिका का उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत ने कुटिलतापूर्वक अपहरण कर लिया। उदायन राजा के लिए यह अपमान का विषय था। श्रावक होते हुए भी अन्याय के प्रतिकार क लिए उन्होने युद्ध करना उचित समझा। उदायन ने उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया। उन्होने न केवल चण्डप्रद्योत को हराया ही

आज सवत्सरी का ऐसा ही शुभ योग आया है। तीर्थंकर भगवतो ने यह श्रेष्ठतम मुहूर्त दिया है। उस पर विश्वास करोगे तो जुवार से माती बन जाएगे। यदि विश्वास न करोगे और इस दुर्लभ अवसर को गॅवा दोगे तो उस मूर्खा पत्नी की तरह पश्चात्ताप करना पडेगा। इस मुहूर्त का लाभ उठा लीजिये। जुवार से मोती बना लीजिये। तीर्थंकर देवो के वचनो पर विश्वास रखकर अपने दोषो की आलोचना करिये, उनको निकाल कर बाहर कीजिये, वैर विरोध को मिटा दीजिये। आपके दोष रूपी जुवार के दाने सद्गुण रूपी मोती मे बदल जाएगे। आप निहाल और धन्य बन जाएगे। आपका इहलौकिक और पारलौकिक जीवन मगलमय बन जाएगा। बडा सुन्दर सुअवसर उपस्थित है –

'यह पर्व पर्युषण आया, घर घर मे मगल छाया रे
यह पर्व पर्युषण आया'

'यह पर्व ससार मे आनद की वृद्धि करने के लिए, घर–घर मे शान्ति का सचार करने के लिए, हृदय को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए आया है। छोटे–छोटे बालको मे भी उमग दिखाई देती है। वे भी उपवास करने को तैयार होते है। बच्चो मे खानेपीने की प्रवृत्ति विशेष पाई जाती है। पर्व दिनो मे वे अच्छा खाना, अच्छा पहनना पसद करते है परन्तु आज का यह पर्व विलक्षण ही है। बालक भी इस दिन उपवास रखना चाहते है। यह त्याग भावना उन सस्कारो का परिणाम है जो तीर्थंकर देव और उनकी परम्परा को सुशोभित करने वाले विशिष्ट गरिमा सम्पन्न त्यागी

आचार्यों और मुनिवरो ने प्रदान किये है। त्याग, व्रत, सवर, आलोचना, प्रतिक्रमण, क्षमापना आदि के द्वारा इस महत्त्वपूर्ण दिन का लाभ लीजिये। बार–बार याद रखिये कि 'पल के बाये मोती निपजते है।'

आज के इस महान् आध्यात्मिक पर्व के प्रसग पर भी कतिपय युवक सामायिक सवर किये बिना ही बैठे है। क्या ही अच्छा हो यदि वे सामायिक करके व्याख्याना श्रमण का लाभ ले। स्वेच्छया व्रत अगीकार कर आत्मानुशासन करना चाहिए। व्रतो की मर्यादा स्वीकार करनी चाहिए। अव्रत अवस्था मे रहना ठीक नहीं है। व्याख्यान मे सामायिक करके बैठने से दुहरा धर्म होता है। आप यहा बैठते तो है फिर सामायिक करने का लाभ क्यो नहीं लेते ? याद रखिये, व्रत–प्रत्याख्यान करने से ही आश्रव से बचा जा सकता है अन्यथा निरर्थक पाप का भार आत्मा पर चढता रहता है। अतएव अव्रत का त्याग कर व्रत–धारण कीजिये और इस महान् मगलमय पर्व की आराधना मे सम्मिलित होइये।

महाराजा उदायन की आराधना -

महाराजा उदायन बारह व्रतधारी श्रावक थे। उनकी दासी स्वर्णगुटिका का उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत ने कुटिलतापूर्वक अपहरण कर लिया। उदायन राजा के लिए यह अपमान का विषय था। श्रावक होते हुए भी अन्याय के प्रतिकार के लिए उन्होने युद्ध करना उचित समझा। उदायन ने उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया। उन्होने न केवल चण्डप्रद्योत को हराया ही

अपितु उसे बन्दी भी बना लिया। जब वे वापस अपने राज्य की ओर सेना एव बन्दियो को लेकर लौट रहे थे तो मार्ग मे सवत्सरी महापर्व का अवसर आ गया।

महाराजा उदायन की उदारता अनुपम थी। बन्दी होने के बावजूद वे राजा चण्डप्रद्योत का सम्मान करते और उसको अपने साथ ही भोजन करवाते थे। सवत्सरी की पूर्व सध्या को उन्होने चण्डप्रद्योत को कहलाया कि कल वे उपवास करेगे, अतएव वे अपनी इच्छानुसार भोजन बनवा ले। चण्डप्रद्योत ने इसे कोई कूटनीतिक चाल समझी। अत उसने भी कहला दिया कि वह भी कल उपवास करेगा।

सावतसरिक प्रतिक्रमण के बाद जब क्षमायाचना का प्रसग आया तो उदायन महाराज ने चण्डप्रद्योत से हार्दिक क्षमा याचना की। वे अपराधी को क्षमा करने के लिए तत्पर थे बशर्ते कि अपराधी अपराध स्वीकार कर ले। चण्डप्रद्योत ने इसे छुटकारे का अवसर मानकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उदायन ने उसे ने केवल क्षमादान ही किया अपितु उसका राज्य भी लौटा दिया। इतना ही नही, जिसके लिए उन्हे सग्राम करना पडा, वह स्वर्णगुटिका दासी भी उसे उपहार रूप मे दे दी। इसे कहते है वास्तविक क्षमापना। सवत्सरी की सही आराधना उदायन राजा ने की। इसीलिए सवत्सरी के प्रसग पर प्रतिवर्ष उनकी स्मृति हृदय पटल पर उभर आती है। प्राय सर्वत्र इस प्रसग पर उनकी गुणगाथा गाई जाती है।

महाराजा उदायन की तरह हमे भी सवत्सरी का आराधन करना है। विगत काल मे किये गये कार्यों की आलोचना कर आत्मशुद्धि करना है। अपने वर्ष भर के कार्यों का लेखाजोखा करना है। किसके साथ कैसा व्यवहार किया है, यह भी आज के दिन सोचने का विषय है। परिवार के सदस्यो के साथ मन–मुटाव और क्लेश की स्थिति तो नही है, किसी को हैरान और परेशान तो नही किया ? पडौसियो के साथ कैसा बर्ताव किया है ? नगरवासियों और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है या नही ? अपने सहयोगी और नौकर के प्रति आत्मीयता की दृष्टि रखी है या उनके शोषण की मनोवृत्ति अपनाई है, इत्यादि विषय भी आज के दिन मनन करने योग्य है। जिनके प्रति अनुचित व्यवहार हुआ है, उनके साथ क्षमायाचना कीजिये और भविष्य के लिए सबके प्रति शुभ भावना रखिये।

सद्व्यवहार से हृदय-परिवर्तन

पूर्वकाल के श्रावको की आदर्श रीति–नीति मेरे मानस पटल पर रह–रह कर उभर आती है। अतएव मै समय–समय पर उनका उल्लेख करता रहता हूँ । ऐसा ही एक प्रसग मुझे याद आता है।

एक बारह व्रतधारी श्रावक पौषध मे बैठे थे। उनकी अनुपस्थिति मे चोरो ने उनके घर मे प्रवेश किया और धन माल चुरा कर ले गये। ये समाचार सेठ जी को मिले। वे पौषधव्रत की आराधना मे लीन रहे। थोडी देर बाद फिर समाचार मिले कि चोर

पकड लिये गये है और धन माल उनसे बरामद कर लिया गया है। इस समाचार से उन्हे प्रसन्नता नही हुई। उनकी चिन्तन धारा ने दूसरा ही रूप लिया। वे सोचने लगे, 'चोरी के अपराध मे राजा उन भाइयो को कठोर दण्ड देगा। मेरा धन और मै उसमे निमित्त बन रहे हैं। मुझे ऐसा यत्न करना चाहिए कि मेरे उन भाइयो को कठोर दण्ड न मिले और उनका सुधार भी हो जाय।'

प्रात काल पौषध की क्रिया पूर्ण कर श्रावक अपने घर पर पहुँचा। घर वालो ने उसे घटना का विवरण सुनाया परन्तु उसकी विचारधारा कुछ और ही चल रही थी। उसने तिजोरी से कुछ रत्न निकाले और उन्हे लेकर राजा को रत्न समर्पित किये और निवेदन किया कि 'मै विशेष प्रयोजन से आपके पास आया हूँ। मेरे घर कल चोर पकडे गये है। आप उन्हे दण्ड देने वाले है। परन्तु मै चाहता हूँ कि आप उन्हे दण्ड न दे।'

राजा ने कहा– 'अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए। उन्होने तुम्हारे घर पर चोरी की है और तुम उन्हे छुडाना चाहते हो, यह कैसी विचित्र बात है ?'

सेठ ने निवेदन किया, 'महाराज, व्यावहारिक और न्यायिक दृष्टि से अपराधी को दण्ड देना उचित है परन्तु मै धार्मिक दृष्टिकोण को प्रधानता देकर उन्हे छुडाना चाहता हूँ। कल सावत्सरिक प्रसग से हमने 84 लाख जीवयोनियो से क्षमायाचना की है। इस प्रकार की उदात्त और उदार धार्मिक भावना लेकर हम चल रहे है। इसलिए आपसे निवेदन है कि उन्हे क्षमादान दे दीजिये।'

करता है, अत उसका परिमार्जन शुद्ध अन्त करणपूर्वक क्षमापना द्वारा कर लेना चाहिए। सबकी भलाई की दृष्टि से शुभ चिन्तन करना चाहिए। क्षमायाचन मे गरीब–अमीर का भेद, छोटे–बडे का भेद, स्त्री–पुरुष का भेद, पहले और पीछे का भेद नही होना चाहिए। जो पहल करता है, वह मीर (वीर) होता है। जो पहले क्षमा मागता है वह महान् है। मिथ्याभिमान यह पहल नही करने देता, अत निकाल फेकिये। हृदय मे सरलता और नम्रता धारण कर परस्पर मे हार्दिक क्षमायाचना करके मन के कालुष्य को मिटा डालिये। देखिये, फिर कैसा आनन्द आता है और कितनी अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी सभा मे खडे होकर कान पकडकर अपनी गलती स्वीकार करते थे, यदि उन्हे अनुभव होता कि उन्होने गलती की है। यदि कोई भी पक्ष गलती स्वीकार करने की हिम्मत नही बना सकता है तो इतना करे कि विगत बातो के लिए किसी पर दोषारोपण न करते हुए उन्हे मेरी झोली मे डाल दे। मन की गाठ को खोल दीजिये। एक दूसरे से साफ अन्त करण से क्षमायाचना कर लीजिये। आप सब मेरे भाई है, इसी दृष्टि से सावधानी दिलाना हूँ। किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य मे रखकर मै नही कह रहा हूँ। समुच्चय रूप से, सिद्धान्त की दृष्टि से प्रतिपादन कर रहा हूँ। यह आपको अच्छा लगे या न लगे, इसका मुझे सोच–विचार नहीं है। मैं तो हित की दृष्टि से कभी–कभी कटुवचन भी बोल देता हूँ। लेकिन किसी व्यक्ति विशेष के लिए नही कहता। मै तो तटस्थ

भाव से प्रतिपादन करता हूँ। मेरे कथन से यदि किसी का दिल दुखा हो तो मै क्षमायाचना करने हेतु तत्पर रहता हूँ। मै केवल हित–बुद्धि से ही उपदेश करता हूँ, अतएव उसे सद्भावना पूर्वक समझने का प्रयास करे। उचित प्रतीत हो तो उस पर आचरण करे।

आत्मालोचना

इस सवत्सरी के प्रसग को लेकर मै अपनी भी आलोचना कर लेना चाहता हूँ। सर्वप्रथम मै परक तारक तीर्थकर देवो और श्रमण–सस्कृति के पूर्वाचार्यो का उपकार मानता हूँ जिनके बताये हुए सयम–मार्ग पर मै यथाशक्ति चलने का प्रयास कर रहा हूँ। बडा उपकार है मुझ पर उन महान् विभूतियो का। कदाचित जानते–अनजानते मेरे द्वारा उनकी कोई आशातना हुई हो, उनकी आज्ञा के विपरीत यदि किसी तत्त्व का मेरे द्वारा प्रतिपादन हुआ हो तो मै अन्त करण पूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

उत्तरदायित्व और कर्तव्य दृष्टि को लेकर सतमण्डल एव सतीवर्ग के विषय मे कुछ कठोर शब्द कहने का प्रसग आ जाता है। सत–सती गण अपनी–अपनी स्थिति से सयम की साधना कर रहे है तदापि कुछ अप्रिय कहने का अवसर आ ही जाता है। मे तटस्थ बुद्धि और कर्तव्य भावना से पेरित होकर ही कुछ कहता हूँ तदापि मे यथावसर उनसे क्षमायाचना कर लेता हूँ। उसी समय या प्रतिक्रमण के समय क्षमायाचना करने का ध्यान रखता हूँ। आज के इस प्रसग पर मै पुन सभी सत–सती वर्ग से क्षमायाचना करता हूँ।

इसी प्रकार श्रावक–श्राविका वर्ग को भी उपदेश के माध्यम से कुछ कहने मे आ ही जाता है। किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य मे रखकर मै कुछ नही कहता, समुच्चय रूप से प्रतिपादन करता हूँ। मै नहीं चाहता कि मेरे शब्दो से किसी के दिल को आघात पहुँचे। लेकिन यदि सत्य बात का प्रतिपादन नही करता हूँ तो भी कर्तव्य से विमुख होता हूँ। सघ ने मेरे कधो पर बडा भारी उत्तरदायित्व डाल रखा है। उसके निर्वाह हेतु मुझे कुझ कहना–सुनना पडता है। यदि यह उत्तरदायित्व न हो तो मुझे अपनी साधना मे, ज्ञान ध्यान मे विशेष अनुकूलता हो सकती है। मुझे अपनी आत्मासाधना मे अपूर्व आनद की अनुभूति होती है और मै उसी मे रहना विशेष पसन्द करता हूँ। लेकिन स्वर्गीय आचार्य देव ने और चतुर्विध सघ ने जो दायित्व सौपा है, उसे यथाशक्ति निभाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसीलिये उपदेश के माध्यम से या अन्य किसी प्रकार से किसी श्रावक–श्राविका को मेरे शब्दो से या व्यवहार से दु ख पहुँचा हो तो पुन पुन क्षमायाचना करता हूँ।

देशनोक सघ का भी मै उपकार मानना चाहता हूँ। यहा का सघ सूझबूझ वाला और सत–सती वर्ग के ज्ञान, दर्शन चारित्र की आराधना मे सहयोग करने वाला है। शान्ति के साथ व्याख्यान श्रवण तथा धर्माराधना मे वह किसी से पीछे नहीं है। साधु और श्रावक एक दूसरे के पूरक कहे गये है। श्रावक, साधु के चारित्र एव सयम के पालन मे सहायक होते हैं। इसी तरह साधु भी श्रावक के व्रताराधन मे सहायक बनते है। प्रभु महावीर की सघ व्यवस्था

बडी सुन्दर और ठोस है।

इसी तरह शास्त्रकारो ने जिन–जिन का उपकार प्ररूपित किया है, उन सभी का मै उपकार मानता हूँ। ज्ञान, दर्शन चारित्र की आराधना मे जो कोई भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे सहायक हुए या हो रहे है, उन सबका उपकार मानते हुए क्षमायाचना करता हूँ।

शान्ति का सचार

बन्धुओ ! यह सवत्सरी पर्व क्षमा और शान्ति का महापर्व है। इसकी सम्यग् आराधना सर्वत्र शान्ति का सचार करने वाली है। यह आत्मा को शान्ति प्रदान करता है, परिवार को शान्ति देता है, जाति और समाज मे शान्ति का विस्तार करता है। देश मे और सारे विश्व मे यह शान्ति का सचार करने वाला है। अतएव शान्ति के इस महान् पर्व की सही आराधना कर अपने जीवन को मगलमय बनावे। आपकी आत्मा मे यह अन्तर्नाद स्फुरित हो –

' खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे
मित्ती मे सव्व भुएसू, वेर मज्झ न केणइ ।।'

इस अन्तर्नाद से जीवनमे त्रिभुवन मे सर्वत्र शान्ति का सचार, प्रसार और विस्तार हो, यही मगलमय भावना ओर कामना है।

'सर्वे सुखिन सन्तु' ।

देशनोक
9–9–1975